BIBLIOTHECA UNIV. IAGELL. CRACOVIENSIS
6153
Czasopismo

SKI.

# NOWOROCZNIK POLSKI

# KALENDARZ

DLA

UMYSŁOWÉJ ROZRYWKI

NA ROK

# 1880.

(Z ILUSTRACJAMI.)

CIESZYN.

NAKŁAD E. FEITZINGERA.

W DRUKARNI HENRYKA FEITZINGERA.

Kalend. 479.

# NOWOROCZNIK POLSKI

## KALENDARZ

DLA

UMYSŁOWÉJ ROZRYWKI

NA ROK

## 1880.

(Z ILUSTRACJAMI.)

Biblioteka Jagiellońska
1002077841

CIESZYN.

NAKŁAD E. FEITZINGERA.

W DRUKARNI HENRYKA FEITZINGERA.

6153
I or

# Rok 1880.

Jest rokiem przestępnym, ma więc 366 dni, czyli 52 tygodni. Rok zaczyna się 1. stycznia. Kościół wschodni rozpoczyna rok nowy 13. stycznia. — Żydzi liczą lata od stworzenia świata i we wrześniu rozpoczną rok 5641. — Turcy, Arabowie, Persowie, słowem wszyscy wyznawcy Mahometa, liczą lata od ucieczki Mahometa z Mekki do Medyny i rozpoczynają rok 1297.

## Zaćmienia tegoroczne.

W roku 1880 przypadają cztéry zaćmienia słońca i dwa zaćmienia księżyca, z których tylko ostatnie zaćmienie słońca i drugie zaćmienie księżyca u nas widzialne będzie.

I. Zaćmienie słońca dnia 11. stycznia, zaczyna się o godz. 9, min. 26 wieczór, a kończy się o godz. 2, min. 32 rano. Widzialném będzie głównie na wielkiem Oceanie a częściowo w Ameryce północnéj.

II. Zaćmienie księżyca dnia 22. czerwca, zaczyna się o godz. 1, min. 48 popołudniu, a kończy się o godz. 4, min. 58. Widzialném będzie w zachodnich częściach Ameryki północnéj, w Australji i Azji.

III. Zaćmienie słońca dnia 7. lipca, zaczyna się o godz. 0, min. 12 popołudniu a kończy się o godz. 5, min. 6. Widzialném będzie tylko częściowo w południowych częściach Ameryki i na południowych krańcach Afryki.

IV. Zaćmienie słońca dnia 2. grudnia, zaczyna się o godz. 4, min. 29 rano, a kończy się o godz. 5, min. 20. Gdy zaćmienie to tylko na południowych biegunach widzialne będzie, przeto bliższe oznaczenia widzenia granic tegoż nie są wskazane.

V. Zaćmienie księżyca dnia 16. grudnia, zaczyna się o godz. 3, min. 18 wieczór, a kończy się o godz. 7, min. 6. Widzialném będzie w Australji, Azji, prawie w całéj Europie i Afryce. U nas zejdzie księżyc w 59 minut po rozpoczęciu zaćmienia.

VI. Zaćmienie słońca dnia 31. grudnia, zaczyna się o godz. 1, min. 30 popołudniu, a kończy się o godz. 4, min. 58. Widzialném będzie w całych Niemczech, jednak w całości tylko w południowo zachodnich częściach Niemiec, podczas gdy w resztę częściach tychże słońce jeszcze przed końcem zaćmienia zajdzie.

## Liczby zwrotów kalendarskich.

| Podług nowego kalendarza Gregorjańskiego. | | | Podług starego kalendarza Juljańskiego. |
|---|---|---|---|
| | 19. | Liczba złota | 19. |
| | XVIII. | Epakta | XXIX. |
| | 13. | Okres słońca | 13. |
| | 8. | Poczet rzymski | 8. |
| | D. C. | Litera niedzielna | F. E. |

Panującym planetą jest **Księżyc.**

## Cztery pory roku astronomiczne.

**Wiosna,** zaczyna się dnia 20. marca o g. 7 rano. — **Lato,** zaczyna się dnia 21. czerwca o g. 4 rano. — **Jesień,** zaczyna się dnia 22. września o g. 6 wieczór. — **Zima,** zaczyna się dnia 21. grudnia o g. 11 rano.

## Święta dworskie.

Urodziny cesarza Franciszka Józefa I., cesarza austrjackiego, króla węgierskiego itd. dnia 18. sierpnia; — Imieniny cesarza Franciszka Józefa I., dnia 4. października. — Urodziny cesarzowéj Elżbiety dnia 24. grudnia; — Imieniny 19. listopada. — Urodziny cesarzewicza Rudolfa 21. sierpnia.

## Uroczystości świętych patronów:

W Galicji: **św. Michał** 29. września. — W Krakowie: **św. Stanisław B.** 8. maja. W Szląsku: **św. Jadwiga** 15. października.

## Dwanaście znaków niebieskich.

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ♈ | Baran | ♌ | Lew | ♐ | Strzelec |
| ♉ | Byk | ♍ | Panna | ♑ | Koziorożec |
| ♊ | Bliźnięta | ♎ | Waga | ♒ | Wodnik |
| ♋ | Rak | ♏ | Niedźwiadek | ♓ | Ryby |

Rok jest przeważnie więcéj wilgotny jak suchy.

| Dnie tyg. | | *Rzymsko-katolickie* | *Ewangielickie* | Die |
|---|---|---|---|---|
| 1 | C. | Nowy Rok | Nowy Rok | |
| 2 | P. | Makarego Op. | Kaspra | |
| 3 | S. | Genowefy P. | Grzegorza | |
| 1. | | Św. Mat. 2, 19—23. | Mat. 2, 12—23. | |
| 4 | N. | D pr. 3 Król. Tytusa | D pr. Ep. Baltazara | |
| 5 | P. | Telesfora ☾ | Szymona | |
| 6 | W. | Trzech Króli | Epifanji | |
| 7 | S. | Walentego | Juliana | |
| 8 | C. | Seweryna Op. | Erharda | |
| 9 | P. | Marcjanny P. | Marcjanny | |
| 10 | S. | Pawła Pust. | Zacharjasza | |
| 2. | | Św. Łuk. 2, 42—52. | Łuk. 2, 41—52. Rzym. 12, 1—5. | |
| 11 | N. | D 1. po 3 Kr. Higina | D 1. po Ep. Alojzego | |
| 12 | P. | Honoraty P. ● | Reinholda | |
| 13 | W. | Hilarego B. | Hilarego | |
| 14 | S. | Feliksa z Noli | Feliksa | |
| 15 | C. | Maura Op. | Traugota | |
| 16 | P. | Marcelego | Marcelego | |
| 17 | S. | Antoniego Pust. | Antoniego | |
| 3. | | Św. Jan 2, 1—11. | Jan 2, 1—11. Rzym. 12, 6—16. | |
| 18 | N. | D 2. po 3 Kr. Imie Jez. | D 2. po Ep. Felicyty | |
| 19 | P. | Ferdynanda ☽ | Pryski | |
| 20 | W. | Fabiana i Seb. | Fabiana i Seb. | |
| 21 | S. | Agnieszki P. M. | Agnieszki | |
| 22 | C. | Wincentego | Wincentego | |
| 23 | P. | Zaślub. N. P. M. | Emerencji | |
| 24 | S. | Tymoteusza | Tymoteusza | |
| 4. | | Św. Mat. 20, 1—16. | Mat. 20, 1—16. 1 Rzym. 9. | |
| 25 | N. | D Starozap. Naw. ś. P. | D Starozap. Naw. P. | |
| 26 | P. | Polikarpa | Polikarpa | |
| 27 | W. | Jana Chryzost. ○ | Jana Złot. | |
| 28 | S. | Karola Wielk. | Karoliny | |
| 29 | C. | Franciszka Salez. | Teobalda | |
| 30 | P. | Martyny P. | Ludwika | |
| 31 | S. | Piotra Nol. | Wirgiljusza | |

| | *Grecko-katolickie* | Wsch. Słońca g. | m | Zach. g. | m. |
|---|---|---|---|---|---|
| 20 | Ihnatyja | 7. | 58 | 4. | 10 |
| 21 | Julyanny M. | 7. | 58 | 4. | 11 |
| 22 | Anastazyi | 7. | 58 | 4. | 12 |
| | Mat. 1, 1—25. | | | | |
| 23 | N. pr. Rożd. Hł. 6. | 7. | 58 | 4. | 13 |
| 24 | Jewhenyi † | 7. | 58 | 4. | 14 |
| 25 | Rożd. Chryst. | 7. | 58 | 4. | 16 |
| 26 | Sobor P. Bohor. | 7. | 58 | 4. | 17 |
| 27 | Stefana Mucz. | 7. | 58 | 4. | 18 |
| 28 | 2000 Mucz. | 7. | 57 | 4. | 19 |
| 29 | SS. Mładenc. | 7. | 55 | 4. | 20 |
| | Mat. 2, 13—23. | | | | |
| 30 | N. po Rożd. Hł. 7. | 7. | 54 | 4. | 22 |
| 31 | Mełanyi | 7. | 54 | 4. | 23 |
| 1 | Henw. 1880. Ob. H. | 7. | 54 | 4. | 24 |
| 2 | Sylwestra | 7. | 53 | 4. | 26 |
| 3 | Mełachia | 7. | 52 | 4. | 27 |
| 4 | Sobor 70 Ap. | 7. | 52 | 4. | 29 |
| 5 | Fteopemta | 7. | 52 | 4. | 30 |
| | Mark. 1, 1—8. | | | | |
| 6 | Bohojaw. Hos. H. 8. | 7. | 51 | 4. | 31 |
| 7 | Sobor s. Joana | 7. | 50 | 4. | 33 |
| 8 | Hryhoria Pr. | 7. | 49 | 4. | 34 |
| 9 | Połyjewkła M. | 7. | 49 | 4. | 35 |
| 10 | Hryhoria Jep. | 7. | 48 | 4. | 37 |
| 11 | Fteodozya Pr. | 7. | 47 | 4. | 39 |
| 12 | Tatyanny | 7. | 46 | 4. | 40 |
| | Mat. 4, 12—17. | | | | |
| 13 | N. 1. po Bohoj. H. 1. | 7. | 45 | 4. | 42 |
| 14 | SS. Otec w S. | 7. | 44 | 4. | 44 |
| 15 | Pawła Ftew. | 7. | 43 | 4. | 46 |
| 16 | Petra Weł. | 7. | 42 | 4. | 47 |
| 17 | Antonya Weł. | 7. | 41 | 4. | 48 |
| 18 | Aftanazya | 7. | 40 | 4. | 49 |
| 19 | Makarya | 7. | 39 | 4. | 50 |

**Odmiany księżyca i domyślny stan powietrza.**

☾ Ostatnia kwadra d. 5. o godz. 8 min. 22 rano. Zimno przy silnem wietrze.

● Nów d. 12. o godz. 0 min. 13 rano. Ostre mrozy.

☽ Pierwsza kwadra d. 19. o godz. 8 min. 13 rano. Odwilż.

○ Pełnia d. 27. o godz. 11 min. 45 rano. Mroźno i wietrzno.

---

W styczniu rośnie dzień od 1. do 31. o 1 godzinę.

Długość dnia w przecięciu 9 godzin.

Księżyc przybliża się do ziemi d. 10. a oddala się d. 21.

---

**Kalendarz żydowski.**

14. stycznia 1. Szebat 5640.

---

**Przepowiednie według kalendarza 100-letniego.**

Styczeń. Mrozy do 11., od 12. do 18. pochmurno, potém pogoda i zimno do 21., następnie powietrze łagodne.

---

**Przypowieści kalendarskie.**

Z Nowym-Rokiem styczeń mrozi,
Chłop łuczywa łupie, a drwa z lasu zwozi.
Styczeń — Więc do pieca się przyczyń.

| Dnie tyg. | | *Rzymsko-katolickie* | *Ewangielickie* | Bi |
|---|---|---|---|---|
| 5. | | Św. Łuk. 8, 4—15. | Łuk. 8, 4—15. List 2. K. 11. | |
| 1 | N. | D Mięsop. Ignacego | D Mięsop. Brygidy | |
| 2 | P. | N. M. P. Grom. | Ocz. Mar. Panny | |
| 3 | W. | Błażeja ☾ | Błażeja | |
| 4 | S. | Weroniki P. | Weroniki | |
| 5 | C. | Agaty P. M. | Agaty | |
| 6 | P. | Doroty P. | Doroty | |
| 7 | S. | Romualda | Ryszarda | |
| 6. | | Św. Łuk. 18, 31—42. | Łuk. 18, 31—42. List Kor. 13. | |
| 8 | N. | D Zapust. Jana z M. | D Zapust. Salom. | |
| 9 | P. | Apolonji | Apolonji | |
| 10 | W. | Scholastyki ♈ | Schol. i Gabr. | |
| 11 | S. | Popielec. Lucyan. † | Eufrozyny | |
| 12 | C. | Eulalji | Eulalji | |
| 13 | P. | Katarzyny P. † | Kastora | |
| 14 | S. | Walentego † | Walentego | |
| 7. | | Św. Mat. 4, 1—11. | Mat. 4, 1—11. 2 Kor. 6. | |
| 15 | N. | C 1. Wstęp. Faustyna | C 1. Wstęp. Faustyna | |
| 16 | P. | Juljanny | Juljanny | |
| 17 | W. | Konstancji P. | Konstantego | |
| 18 | S. | Such. Flawiana ☽ † | Zuzanny | |
| 19 | C. | Konrada Pust. | Ulryka | |
| 20 | P. | Nicefora † | Gabina | |
| 21 | S. | Eleonory † | Eleonory | |
| 8. | | Św. Mat. 17, 1—9. | Mat. 15, 21—28. Paweł Tes. 4. | |
| 22 | N. | C 2. Sucha Piotra K. | C 2. Sucha Gawła | |
| 23 | P. | Romany P. | Łazarza | |
| 24 | W. | Dzień przestępny | Dzień przestępny | |
| 25 | S. | Macieja Ap. † | Macieja | |
| 26 | C. | Wiktora z Ar. ♋ | Wiktora | |
| 27 | P. | Aleksandra B. † | Gottharda | |
| 28 | S. | Leandra † | Leandra | |
| 9. | | Św. Łuk. 11, 14—28. | Łuk. 11, 14—28. Efez. 5. | |
| 29 | N. | C 3. Głucha Romana Op. | C 3. Głucha Romana | |

| | *Grecko-katolickie* | Wsch. Słońca g. | Wsch. Słońca m. | Zach. g. | Zach. m. |
|---|---|---|---|---|---|
| | Łuk. 18, 18—27. | | | | |
| 20 | N. 2. po Boh. H. 2. | 7. | 37 | 4. | 52 |
| 21 | Maxyma | 7. | 35 | 4. | 54 |
| 22 | Tymofteya | 7. | 33 | 4. | 56 |
| 23 | Kłymenta | 7. | 32 | 4. | 57 |
| 24 | Xenyi | 7. | 31 | 4. | 59 |
| 25 | Hryhorya | 7. | 30 | 5. | 1 |
| 26 | Ksenofonta | 7. | 28 | 5. | 3 |
| | Łuk. 18, 35—43. | | | | |
| 27 | N. 3. po Boh. H. 3. | 7. | 26 | 5. | 4 |
| 28 | Jefrema | 7. | 25 | 5. | 7 |
| 29 | Ihnatyia | 7. | 23 | 5. | 9 |
| 30 | Trech Swiatyt. | 7. | 22 | 5. | 10 |
| 31 | Kyra i Joana | 7. | 20 | 5. | 11 |
| 1 | Fewr. Tryfona | 7. | 18 | 5. | 12 |
| 2 | Strytenje Hosp. | 7. | 17 | 5. | 13 |
| | Łuk. 19, 1—10. | | | | |
| 3 | N. 4. po Boh. H. 4. | 7. | 15 | 5. | 15 |
| 4 | Isydora | 7. | 13 | 5. | 16 |
| 5 | Ahaftyi M. | 7. | 12 | 5. | 18 |
| 6 | Wukoła Pr. | 7. | 10 | 5. | 20 |
| 7 | Parftenya | 7. | 8 | 5. | 22 |
| 8 | Fteodora S. | 7. | 6 | 5. | 23 |
| 9 | Nykyfora M. | 7. | 5 | 5. | 24 |
| | Łuk. 18, 10—14. | | | | |
| 10 | N. 5. o M. i F. H. 5. | 7. | 3 | 5. | 26 |
| 11 | Własya | 7. | 2 | 5. | 28 |
| 12 | Mełetya | 7. | 0 | 5. | 29 |
| 13 | Martyniana | 6. | 58 | 5. | 31 |
| 14 | Awxentya | 6. | 55 | 5. | 33 |
| 15 | Onysyma | 6. | 54 | 5. | 34 |
| 16 | Pamfyła | 6. | 53 | 5. | 35 |
| | Łuk. 15, 11—32. | | | | |
| 17 | N. 6. o Syn. ob. H. 6. | 6. | 52 | 5. | 36 |

**Odmiany księżyca i domyślny stan powietrza.**

☾ Ostatnia kwadra d. 3. o godz. 5 min. 11 wieczór. Powietrze łagodne.

● Nów d. 10. o godz. 0 min. 50 wieczór. Śnieg i dészcz.

☽ Pierwsza kwadra d. 18. o godz. 5 min. 19 rano. Śnieg i wiatr.

○ Pełnia d. 26. o godz. 2 min. 55 rano. Powietrze mroźne.

---

W lutym rośnie dzień o 1 godzinę i minut 27.

Długość dnia w przecięciu 10 godzin 10 minut.

Księżyc przybliża się do ziemi d. 6. a oddala się d. 18.

---

**Kalendarz żydowski.**

13. lutego 1. Adar. 25. lut. 13. Adar, Post Estery. 26. lutego 14. Adar, Purim czyli Haman. 27. lutego 15. Adar, Szuszan Purim.

---

**Przepowiednie według kalendarza 100-letniego.**

Luty. Do 4. dészcz, od 5. do 10. pochmurno i wiatr, 14. śnieg, od 15. do 19. dészcz i pochmurno, potém do końca pogoda.

---

**Przypowieści kalendarskie.**

Czasem luty się zlituje — Że człek niby wiosnę czuje;
Ale czasem tak się zżyma — Że człek prawie nie wytrzyma.

W dzień świętéj Agaty
Jeśli słonko przez okno zajrzy ci do chaty,
To wiosenka pogląda na świat z za zimowéj kraty.

Na świętego Walentego — Bywa zwykle mróz niczego.
To dobrze! — Bo jak Walek się rozdészcze,
To mrozy powrócą jeszcze.

| Dnie | tyg. | *Rzymsko-katolickie* | | *Ewangielickie* | Bieg |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | P. | Albina B. | | Albina | |
| 2 | W. | Symplicjusza | | Symplicjusza | |
| 3 | S. | Kunegundy | † | Kunegundy | |
| 4 | C. | Kazimierza Kr. | ☾ | Adrjana | |
| 5 | P. | Fryderyka O. | † | Fryderyka | |
| 6 | S. | Kolety P. | † | Polikarpa | |
| 10. | | Św. Jan 6, 11—15. | | Jan 6, 1—15. List Gal. 4. | |
| 7 | N. | C 4. Środop. Tomasza | | C 4. Środop. Perpet. | |
| 8 | P. | Jana Boż. | | Beaty | |
| 9 | W. | Cyryla i Metod. | | Cyryla i Metod. | |
| 10 | S. | 40 Męczenników | † | Alexandra | |
| 11 | C. | Anieli F. | ♨ | Rozyny | |
| 12 | P. | Grzegorza Wiel. | † | Grzegorza | |
| 13 | S. | Rozyny P. i Rud. | † | Ernesta | |
| 11. | | Św. Jan 8, 46—59. | | Jan 8, 46—59. List Żyd. 9. | |
| 14 | N. | C 5. Czarna Matyldy | | C 5 Czarna. Abigail | |
| 15 | P. | Longina M. | | Krzysztofa | |
| 16 | W. | Lubina M. | | Henryka | |
| 17 | S. | Gertrudy | † | Gertrudy | |
| 18 | C. | Edwarda II. Kr. | | Anzelma | |
| 19 | P. | 7 bol. P. M. i Józ. | ☽ † | Józefa | |
| 20 | S. | Joachima Oj. M. | † | Joachima | |
| 12. | | Św. Mat. 21, 1—9. | | Mat. 21, 1—19. List do Filip. 2. | |
| 21 | N. | C 6. Kwiet. Benedyk. | | C 6. Palm. Benedyk. | |
| 22 | P. | Oktawiana | | Kazimierza | |
| 23 | W. | Wiktora M. | | Eberharda | |
| 24 | S. | Gabryela | † | Gabryela | |
| 25 | C. | Zwiast. N. P. M. | | Zwiast. M. P. | |
| 26 | P. | Wielki Piątek | ✠ † | Wielki Piątek | |
| 27 | S. | Wielka Sobota | † | Wielka Sobota | |
| 13. | | Św. Mark. 16, 1—7. | | Mark. 16, 1—7. List do Kor. 5. | |
| 28 | N. | C Wielkanoc | | C Ś. Wielk. Anieli | |
| 29 | P. | Poniedz. Wielki | | 2. Św. Wielk. Eust. | |
| 30 | W. | Kwiryna | | Gwidona | |
| 31 | S. | Balbiny | | Amosa | |

## *Martius) ma dni 31.*

| | *Grecko-katolickie* | Wsch. Słońca g. | m. | Zach. g. | m. |
|---|---|---|---|---|---|
| 18 | Lwa pap. rym. | 6. | 51 | 5. | 36 |
| 19 | Archypa | 6. | 49 | 5. | 38 |
| 20 | Łeona Jep. | 6. | 47 | 5. | 40 |
| 21 | Tymofteya Pr. | 6. | 45 | 5. | 42 |
| 22 | S. S. Mucz. w E. | 6. | 42 | 5. | 44 |
| 23 | Subota zadusz. | 6. | 40 | 5. | 45 |
| | Mat. 25, 31—46. | | | | |
| 24 | N. Miasop. Hł. 7. | 6. | 38 | 5. | 47 |
| 25 | Tarasia | 6. | 36 | 5. | 48 |
| 26 | Porfyrya | 6. | 33 | 5. | 50 |
| 27 | Prokopia Pr. | 6. | 31 | 5. | 51 |
| 28 | Wasyłya Pr. | 6. | 30 | 5. | 53 |
| 29 | Kassyana | 6. | 28 | 5. | 54 |
| 1 | **Mart.** Eudokii | 6. | 25 | 5. | 56 |
| | Mat. 6, 14—21. | | | | |
| 2 | N. Syrop. Hł. 8. | 6. | 23 | 5. | 57 |
| 3 | Ewtropia | 6. | 22 | 5. | 58 |
| 4 | Harasyma | 6. | 20 | 5. | 59 |
| 5 | Konona M. | 6. | 18 | 6. | 0 |
| 6 | S. S. 42 Mucz. | 6. | 16 | 6. | 1 |
| 7 | Wasyłya M. | 6. | 13 | 6. | 3 |
| 8 | Fteofyłakta Pr. | 6. | 12 | 6. | 5 |
| | Joan 1, 43—51. | | | | |
| 9 | N. 1. Post. Hł. 1. | 6. | 9 | 6. | 6 |
| 10 | Kodrata M. | 6. | 7 | 6. | 7 |
| 11 | Sofronya P. | 6. | 5 | 6. | 9 |
| 12 | Fteofana | 6. | 3 | 6. | 10 |
| 13 | Nikyfora | 6. | 1 | 6. | 11 |
| 14 | Wenedykta | 5. | 59 | 6. | 13 |
| 15 | Ahapyia M. | 5. | 56 | 6. | 15 |
| | Mark. 2, 1—12. | | | | |
| 16 | N. 2. Post. Hł. 2. | 5. | 54 | 6. | 16 |
| 17 | Alexia P. | 5. | 52 | 6. | 18 |
| 18 | Kiryłła A. | 5. | 50 | 6. | 20 |
| 19 | Hrysanfta M. | 5. | 48 | 6. | 21 |

**Odmiany księżyca i domyślny stan powietrza.**

☾ Ostatnia kwadra d. 4. o godz. 0 min. 39 rano. Mroźno.

● Nów d. 11. o godz. 2 min. 20 rano. Powietrze wilgotne.

☽ Pierwsza kwadra d. 19. o godz. 2 min. 9 rano. Posępno i silne wichry.

○ Pełnia d. 26. o godz. 2 min. 56 wieczór. Pogoda i łagodne powietrze.

---

W marcu rośnie dzień o 1 godzinę i minut 47.

Długość dnia w przecięciu 11 godzin.

Księżyc przybliża się do ziemi dnia 2. i 29. a oddala się dnia 17.

---

**Kalendarz żydowski.**

13. marca 1. Nisan. 27. marca 15. Nisan, Początek Wielkanocy. 28. marca 16. Nisan, Drugie Św. Wielk.

---

**Przepowiednie według kalendarza 100-letniego.**

Marzec. Do 5. nieprzyjemnie i zimno, od 6. do 9. ciepło, 11. dészcz, od 12. do 16. pięknie, od 17. do 19. zimno, potém dészcz.

---

**Przypowieści kalendarskie.**

Śpieszże w pole, choć potrochu
Rzucić w ziemię owsa, grochu.
W marcu kto siać nie zaczyna,
Dobra swego zapomina.

| Dnie tyg. | | *Rzymsko-katolickie* | *Ewangielickie* | Bieg |
|---|---|---|---|---|
| 1 | C. | Hugona | Teodora | |
| 2 | P. | Franciszka de Paul ☾ | Amalji | |
| 3 | S. | Ryszarda B. | Tugendreicha | |
| 14. | | Św. Jan 20, 19—31. | Jan 20, 19—31. 1 List Jana 5. | |
| 4 | N. | C 1. po Wielk. Izydora | C 1. po Wielk. Ambr. | |
| 5 | P. | Wincentego | Maksyma | |
| 6 | W. | Celestyna | Ireneusza | |
| 7 | S. | Hermana | Luizy | |
| 8 | C. | Dyonizego B. | Dyonizego | |
| 9 | P. | Marji Eg. ● | Leona | |
| 10 | S. | Ezechiela | Daniela | |
| 15. | | Św. Jan 10, 11—16. | Jan 10, 11—16. 1 Piotra 2. | |
| 11 | N. | C 2. po Wielk. Leona | C 2. po Wielk. Leona | |
| 12 | P. | Juliusza | Eustregjusza | |
| 13 | W. | Justyny M. | Idy | |
| 14 | S. | Walerjana | Tyburcji | |
| 15 | C. | Anastazji | Olimpji | |
| 16 | P. | Kaliksta | Ireny | |
| 17 | S. | Rudolfa ☽ | Rudolfa | |
| 16. | | Św. Jan 16, 16—22. | Jan 16, 16—22. List 1 Piotra 2. | |
| 18 | N. | C 3. po Wielk. O. ś. J. | C 3. po Wielk. Chryz. | |
| 19 | P. | Emmy wdowy | Hermogenesa | |
| 20 | W. | Agniszki | Sulpicjusza | |
| 21 | S. | Anzelma B. | Adolarjusza | |
| 22 | C. | Sotera i Kaja | Sotera | |
| 23 | P. | Wojciecha B. | Grzegorza | |
| 24 | S. | Jerzego M. | Alberta | |
| 17. | | Św. Jan 16, 5—15. | Jan 16, 5—15. List Jakóba 1. | |
| 25 | N. | C 4. po Wielk. Marka ☺ | C 4. po Wielk. Marka | |
| 26 | P. | Kleta i Marc. | Kleta | |
| 27 | W. | Peregryny | Anastasia | |
| 28 | S. | Witalisa | Witalisa | |
| 29 | C. | Piotra Męcz. | Sybili | |
| 30 | P. | Katarzyny Sen. | Eutropjusza | |

## *Aprilis) ma dni 30.*

| | *Grecko-katolickie* | Wsch. Słońca g. | m. | Zach. g. | m. |
|---|---|---|---|---|---|
| 20 | Prep. Otec | 5. | 46 | 6. | 23 |
| 21 | Jakowa | 5. | 44 | 6. | 25 |
| 22 | Wasyłya | 5. | 42 | 6. | 27 |
| | Mark. 8, 34—9. 1. | | | | |
| 23 | N. 3. Post. Hł. 3. | 5. | 40 | 6. | 28 |
| 24 | Zacharyi Pr. | 5. | 39 | 6. | 29 |
| 25 | Błah. P. Bohor. | 5. | 37 | 6. | 30 |
| 26 | Sobor Hawryiła | 5. | 35 | 6. | 31 |
| 27 | Matrony Senn. | 5. | 33 | 6. | 33 |
| 28 | Iłaryona Pr. | 5. | 31 | 6. | 34 |
| 29 | Marka | 5. | 29 | 6. | 35 |
| | Mark. 9, 17—31. | | | | |
| 30 | N. 4. Post. Hł. 4. | 5. | 28 | 6. | 36 |
| 31 | Ipatya Jep. | 5. | 27 | 6. | 38 |
| 1 | **Aprił.** Maryi | 5. | 24 | 6. | 39 |
| 2 | Tyxta Pr. | 5. | 22 | 6. | 41 |
| 3 | Nikity Pr. | 5. | 20 | 6. | 42 |
| 4 | Josyfa | 5. | 18 | 6. | 44 |
| 5 | Fteodula | 5. | 16 | 6. | 45 |
| | Mark. 10, 32—45. | | | | |
| 6 | N. 5. Post. Hł. 5. | 5. | 15 | 6. | 46 |
| 7 | Heorhya Mełyt. | 5. | 14 | 6. | 47 |
| 8 | Irydiona | 5. | 12 | 6. | 48 |
| 9 | Jewpsyhia | 5. | 10 | 6. | 49 |
| 10 | Terentya | 5. | 8 | 6. | 50 |
| 11 | Antypy M. | 5. | 7 | 6. | 52 |
| 12 | Wasyłya Pr. | 5. | 3 | 6. | 54 |
| | Joan 12, 1—18. | | | | |
| 13 | N. 6. Post. Hł. 6. | 4. | 59 | 6. | 56 |
| 14 | Martyna P. R. | 4. | 57 | 6. | 59 |
| 15 | Arystarcha A. | 4. | 56 | 7. | 1 |
| 16 | Ahapii M. | 4. | 54 | 7. | 2 |
| 17 | Czetwer Wełyki | 4. | 52 | 7. | 3 |
| 18 | Piatok Wełyki | 4. | 51 | 7. | 4 |

### Odmiany księżyca i domyślny stan powietrza.

☾ Ostatnia kwadra d. 2. o godz. 7 min. 46 rano. Wicher.

● Nów d. 9. o godz. 4 min. 40 wieczór. Powietrze przyjemne.

☽ Pierwsza kwadra d. 17. o godz. 8 min. 48 wieczór. Dészcz i wiatr.

○ Pełnia d. 25. o godz. 0 min. 23 rano. Powietrze przyjemne.

---

W kwietniu rośnie dzień o 1 godzinę i minut 36.

Długość dnia w przecięciu 13 godzin.

Księżyc oddala się od ziemi d. 14. a przybliża się d. 26.

---

### Kalendarz żydowski.

2. kwietn. 21. Nisan, Siódme Św. Wielkanocy. 3. kwietnia 22. Nisan, Koniec Wielkanocy. 12. kwietnia 1. Ijar. 29. kwietnia 18. Ijar, Lag-Beomer, Szkolne Święto.

---

### Przepowiednie według kalendarza 100-letniego.

Kwiecień. 5. nieprzyjemnie i zimno, od 6. do 9. ciepło, 11. dészcz, od 12. do 16. pięknie, od 17. do 19. zimno, potém dészcz.

---

### Przypowieści kalendarskie.

Kwiecień — plecień, bo przeplata
Trocha zimy, trocha lata.

Na świętego Wojciecha —
Wołowi pociecha —
Bo się najadł trawy że zaledwo decha.

*

| Dnie tyg. | | *Rzymsko-katolickie* | *Ewangielickie* | Bieg |
|---|---|---|---|---|
| 1 | S. | Filipa i Jak. ☾ | Filipa | |
| 18. | | Św. Jan 16, 23—30. | Jan 16, 23—30. List Jakóba 1. | |
| 2 | N. | C 5. po Wielk. Zyg. | C 5. po Wielk. Zyg. | |
| 3 | P. | Znal. ś. krzyża (Dni krz.) | Znalez. ś. krzyża | |
| 4 | W. | Florjana (Dni krz.) | Florjana | |
| 5 | S. | Piusa V. Pap. (Dni krz.) | Gotharda | |
| 6 | C. | Wniebowstąp. P. | Wniebowstąp. P. | |
| 7 | P. | Domiceli Panny | Bogumiła | |
| 8 | S. | **Stanisława B.** | Stanisława | |
| 19. | | Św. Jan 15 i 16, 1—13. | Jan 15 i 16, 1—4. List 1 Piotra 4. | |
| 9 | N. | C 6. po Wielk. Grzeg. | C 6. po Wielk. Jóba | |
| 10 | P. | Izydora Or. | Wiktorji | |
| 11 | W. | Beatryksy P. | Alberta | |
| 12 | S. | Pankracego | Pankracego | |
| 13 | C. | Serwacego | Serwacego | |
| 14 | P. | Bonifacego | Bonifacego | |
| 15 | S. | Zofji i 3 córek † | Zofji | |
| 20. | | Św. Jan 14, 23—31. | Jan 14, 23—31. Dz. Ap. 2. | |
| 16 | N. | C Zielone Święta | C Zesł. Ducha ś. | |
| 17 | P. | Poniedz. Ziel. Św. ☽ | Poniedz. Świąt. | |
| 18 | W. | Feliksa spow. | Liborjusza | |
| 19 | S. | Such. Piotra C. † | Potencjusza | |
| 20 | C. | Bernarda | Anastazego | |
| 21 | P. | Heleny Kr. † | Heleny | |
| 22 | S. | Julji P. † | Prudencjusza | |
| 21. | | Św. Mat. 28, 18—20. | Jan 3, 1—15. List do Rzym. 11. | |
| 23 | N. | C 1. Św. Trójcy | C Św. Trójcy | |
| 24 | P. | Joanny wdowy | Joanny | |
| 25 | W. | Urbana Pap. | Urbana | |
| 26 | S. | Filipa Ner. | Bedy | |
| 27 | C. | Boże Ciało | Florencjusza | |
| 28 | P. | Wilhelma | Wilhelma | |
| 29 | S. | Maksyma | Maksyma | |
| 22. | | Św. Łuk. 14, 16—24. | Łuk. 16, 19—31. 1 List Jana 4. | |
| 30 | N. | C 2. po Święt. Fel. | C 1 po ś. Tr. Wig. | |
| 31 | P. | Petroneli P. ☾ | Petroneli | |

# *Majus) ma dni 31.*

| | *Grecko-katolickie* | Wsch. Słońca g. | m. | Zach g. | m. |
|---|---|---|---|---|---|
| 19 | Subota Wełyka | 4. | 49 | 7. | 6 |
| | Joan 1, 1—17. | | | | |
| 20 | Woskr. Hosp. | 4. | 47 | 7. | 8 |
| 21 | Poned. Woskr. | 4. | 45 | 7. | 9 |
| 22 | Wtorek Woskr. | 4. | 43 | 7. | 11 |
| 23 | Heorhia | 4. | 42 | 7. | 13 |
| 24 | Sawwy | 4. | 40 | 7. | 14 |
| 25 | Marka Jew. | 4. | 38 | 7. | 15 |
| 26 | Wasyłya Jep. | 4. | 37 | 7. | 17 |
| | Joan 20. 19—31. | | | | |
| 27 | N. 1. Ant Hł. 1. | 4. | 35 | 7. | 19 |
| 28 | Jasona | 4. | 33 | 7. | 20 |
| 29 | 9 Mucz. | 4. | 32 | 7. | 21 |
| 30 | Jakowa Ap. | 4. | 31 | 7. | 22 |
| 1 | Maj. Jeremyi | 4. | 30 | 7. | 24 |
| 2 | Aftanazya | 4. | 29 | 7. | 25 |
| 3 | Tymofteja | 4. | 28 | 7. | 27 |
| | Mark. 15, 42. 16, 8. | | | | |
| 4 | N. 2. Myr. Hł. 2. | 4. | 27 | 7. | 28 |
| 5 | Iryny M. | 4. | 25 | 7. | 29 |
| 6 | Jowa Mnoh. | 4. | 24 | 7. | 30 |
| 7 | Znam. cz. Kresta | 4. | 23 | 7. | 32 |
| 8 | Joanna Bohosł. | 4. | 22 | 7. | 33 |
| 9 | Isaji Pr. | 4. | 21 | 7. | 33 |
| 10 | Symeona Ap. | 4. | 20 | 7. | 34 |
| | Joan 5, 2—15. | | | | |
| 11 | N. 3. Rozsł. Hł. 3 | 4. | 19 | 7. | 35 |
| 12 | Jepifania Jep. | 4. | 18 | 7. | 36 |
| 13 | Hłyheryi M. | 4. | 17 | 7. | 38 |
| 14 | Izydora M. | 4. | 16 | 7. | 39 |
| 15 | Pachomyja | 4. | 15 | 7. | 40 |
| 16 | Fteodora | 4. | 14 | 7. | 41 |
| 17 | Andronika | 4. | 14 | 7. | 42 |
| | Joan 4, 5—42. | | | | |
| 18 | N. 4. Sam. Hł. 4. | 4. | 13 | 7. | 43 |
| 19 | Patrykia | 4. | 12 | 7. | 44 |

**Odmiany księżyca i domyślny stan powietrza.**

☾ Ostatnia kwadra d. 1. o godz. 3 min. 26 wieczór. Powietrze niestałe.

🌑 Nów d. 9. o godz. 7 min. 50 rano. Wiatr i dészcz.

☽ Pierwsza kwadra d. 17. o godz. 11 min. 57 rano. Częste ulewy.

🌕 Pełnia d. 24. o godz. 8 min. 12 rano. Powietrze niestałe.

☾ Ostatnia kwadra d. 31. o godz. 0 min. 26 rano. Dnie pogodne.

---

W maju rośnie dzień o 1 godzinę i minut 15.

Długość dnia w przecięciu 15 godzin.

Księżyc oddala się od ziemi d. 11. a przybliża się dnia 24.

---

**Kalendarz żydowski.**

11. maja 1. Siwan, 16. maja 6. Siwan, Zielone Św. 17. maja 7. Siwan, Drugie Św. Ziel. Św.

---

**Przepowiednie według kalendarza 100-letniego.**

Maj. Do 9. pogodnie i ciepło, od 10. do 13. gorąco, potém zimno i dészcz, od 14. do 27. pochmurno, 28. zimno, 30. i 31. ciepło.

---

**Przypowieści kalendarskie.**

Szumno w maju — w polu,
w gaju,
Brzęczy łąka, dźwięczy niwa
Ptak i pasterz, wszystko
śpiewa:
Boże daj! Boże daj!
Aby wiecznie trwał nam maj!

**

| Dnie tyg. | | *Rzymsko-katolickie* | *Ewangielickie* | Bieg |
|---|---|---|---|---|
| 1 | W. | Nikodema M. | Nikodema | |
| 2 | S. | Erazma B. | Marcelina | |
| 3 | C. | Klotyldy Kr. | Erazma | |
| 4 | P. | Serce Jez. Flawiana | Karpa | |
| 5 | S. | Bonifacego B. | Bonifacego | |
| 23. | | Św. Łuk. 15, 1—10. | Łuk. 14, 16—24. 1 List Jana 3. | |
| 6 | N. | C 3. po Święt. Norb. | C 2. po św. Tr. Benig. | |
| 7 | P. | Roberta B. M. ☯ | Roberta | |
| 8 | W. | Medarda B. | Medarda | |
| 9 | S. | Prim. i Felic. | Pryma | |
| 10 | C. | Małgorzaty | Onufrego | |
| 11 | P. | Barnaby Ap. | Barnabasza | |
| 12 | S. | Onufrego W. | Bazylidesa | |
| 24. | | Św. Łuk. 5, 1—11. | Łuk. 15, 1—10. 1 List Piotra 5. | |
| 13 | N. | C 4. po Święt. Anton. | C 3. po św. Tr. Tobia. | |
| 14 | P. | Bazylego | Elizabeusza | |
| 15 | W. | Wita i Mod. ☽ | Wita | |
| 16 | S. | Franciszka Reg. | Engelberta | |
| 17 | C. | Adolfa B. | Laury | |
| 18 | P. | Marka i Marcelina | Marka | |
| 19 | S. | Gerwazego i Prot. | Gerwazego | |
| 25. | | Św. Mat. 5, 20—26. | Łuk. 6, 36—42. List Rzym. 8. | |
| 20 | N. | C 5. po Święt. Sylw. | C 4. po św. Tr. Syl. | |
| 21 | P. | Alojzego | Sylasa | |
| 22 | W. | Paulina B. ♋ | Gothilfa | |
| 23 | S. | Zenona B. | Bazylego | |
| 24 | C. | Jana Chrzc. | Jana Chrzc. | |
| 25 | P. | Prospera B. | Prospera | |
| 26 | S. | Jana i Pawła M. | Jeremiasza | |
| 26. | | Św. Mark. 8, 1—9. | Łuk. 5, 1—11. 1 List Piotra 3. | |
| 27 | N. | C 6. po Święt. Wład. | C 5. po św. Tr. Wład. | |
| 28 | P. | Leona Pap. † | Leona | |
| 29 | W. | Piotra i Pawła ☾ | Piotra i Pawła | |
| 30 | S. | Wspom. św. Pawła | Wspom. Pawła | |

| | *Grecko-katolickie* | Wsch. Słońca g. | m. | Zach. g. | m. |
|---|---|---|---|---|---|
| 20 | Ftatałeja | 4. | 11 | 7. | 45 |
| 21 | Konstanty | 4. | 10 | 7. | 46 |
| 22 | Wasyłyska | 4. | 9 | 7. | 47 |
| 23 | Michaiła Pr. | 4. | 8 | 7. | 47 |
| 24 | Symeona | 4. | 8 | 7. | 48 |
| | Joan 9, 1—38. | | | | |
| 25 | N. 5. Slipor Hł. 5 | 4. | 8 | 7. | 49 |
| 26 | Karpa A. | 4. | 7 | 7. | 50 |
| 27 | Fteraponta | 4. | 7 | 7. | 50 |
| 28 | Nikity P. | 4. | 6 | 7. | 51 |
| 29 | Wozn. Hosp. | 4. | 6 | 7. | 52 |
| 30 | Isaakya A. | 4. | 6 | 7. | 53 |
| 31 | Jermyia A. | 4. | 6 | 7. | 53 |
| | Joan 17, 1—13. | | | | |
| 1 | **Junyi.** N. 6 S. S. Otec H. 6 | 4. | 6 | 7. | 54 |
| 2 | Nykyfora | 4. | 5 | 7. | 55 |
| 3 | Łukyłyana M. | 4. | 5 | 7. | 56 |
| 4 | Mytrofana | 4. | 5 | 7. | 56 |
| 5 | Dorofteja Jep. | 4. | 5 | 7. | 57 |
| 6 | Wysaryona | 4. | 5 | 7. | 57 |
| 7 | Subot. zadusz. | 4. | 5 | 7. | 58 |
| | Joan 7, 37—52. | | | | |
| 8 | Sosz. s. Ducha. H. 7. | 4. | 5 | 7. | 58 |
| 9 | Pon. Sosz. s. D. | 4. | 5 | 7. | 58 |
| 10 | Tymofteja Jep. | 4. | 5 | 7. | 58 |
| 11 | Warftołomea | 4. | 5 | 7. | 58 |
| 12 | Onufryja Pr. | 4. | 5 | 7. | 58 |
| 13 | Akiłyny M. | 4. | 6 | 7. | 58 |
| 14 | Ełyseja Pr. | 4. | 7 | 7. | 58 |
| | Mat. 19, 27—30. | | | | |
| 15 | N. 1. W. S. S. Hł. 8. | 4. | 7 | 7. | 58 |
| 16 | Tychona | 4. | 8 | 7. | 57 |
| 17 | Manuiła | 4. | 8 | 7. | 57 |
| 18 | Łeontia | 4. | 9 | 7. | 57 |

**Odmiany księżyca i domyślny stan powietrza.**

🌑 Nów d. 7. o godz. 11 min. 28 wieczór. Powietrze piękne i ciepłe.

☽ Pierwsza kwadra d. 15. o godz. 11 min. 25 wieczór. Pogoda.

🌕 Pełnia d. 22. o godz. 3 min. 19 wieczór. Powietrze nie stałe.

☾ Ostatnia kwadra d. 29. o godz. 11 min. 30 rano. Częste ulewy.

---

W czerwcu rośnie dzień do 20. o minut 19, a po 20. spada o minut 5.

Długość dnia w przecięciu 16 godzin.

Księżyc oddala się od ziemi d. 8. a przybliża się d. 22.

---

**Kalendarz żydowski.**

10. czerwca 1. Tamuz. 26. czerwca 17. Tamuz, Post, Zdobycie świątyni.

---

**Przepowiednie według kalendarza 100-letniego.**

Czerwiec. Z początku pięknie, 4. pochmurno i mgła, 7. dészcz, potém ciepło, od 27. do końca dészcze i chłodno.

---

**Przypowieści kalendarskie.**

Czerwiec temu się zieleni,
Kto do pracy się nie leni.

W czerwcu gospodarze resztki zboża sieją,
Dopokąd słoneczne skwary nie zbyt grzeją.

| Dnie tyg. | | *Rzymsko-katolickie* | *Ewangielickie* | Bieg |
|---|---|---|---|---|
| 1 | C. | Teobalda Op. | Teobalda | |
| 2 | P. | Nawiedzenie N. M. P. | Nawiedz. M. P. | |
| 3 | S. | Heljodora | Korneljusza | |
| 27. | | Św. Mat. 7, 15—23. | Mat. 5, 20—26. List Rzym. 6. | |
| 4 | N. | C 7. po Święt. Józefa K. | C 6. po św. Tr. Uir. | |
| 5 | P. | Filomeny P. | Szarloty | |
| 6 | W. | Izajasza Pr. | Izajasza | |
| 7 | S. | Pulcherji | Wilibalda | |
| 8 | C. | Elżbiety K. | Kiljana | |
| 9 | P. | Lukrecji i Cyrl. | Alojzyi | |
| 10 | S. | Amalji P. | Bogusławy | |
| 28. | | Św. Łuk. 16, 1—9. | Mark. 8, 1—9. Rzym. 6. | |
| 11 | N. | C 8. po Święt. Jana z D. | C 7. po św. Tr. Pius | |
| 12 | P. | Henryka | Henryka | |
| 13 | W. | Małgorzaty | Małgorzaty | |
| 14 | S. | Bonawentury | Bonawentury | |
| 15 | C. | Rozesł. Apost. | Baldwina | |
| 16 | P. | N. M. P. Szkaplerz. | Ruty | |
| 17 | S. | Aleksego Wyz. | Aleksego | |
| 29. | | Św. Łuk. 19, 41—48. | Mark. 7, 15—23 List Rzym. 8. | |
| 18 | N. | C 9. po Święt. Szym. z L. | C 8. po św. Tr. Eugen. | |
| 19 | P. | Wincentego z Paul. | Rufina | |
| 20 | W. | Czesława i Kas. | Eliasza | |
| 21 | S. | Praksedy P. | Pauliny | |
| 22 | C. | Marji Magdal. | Marji Magdal. | |
| 23 | P. | Apolinarego | Apolinarego | |
| 24 | S. | Krystyny P. | Krystyny | |
| 30. | | Św. Łuk. 18, 9—14. | Łuk. 16, 1—9. 1 List Kor. 10. | |
| 25 | N. | C 10. po Święt. Jakóba | C 9. po św. Tr. Jakóba | |
| 26 | P. | Anny M. Mar. | Anny | |
| 27 | W. | Natalji P. | Marty | |
| 28 | S. | Inocentego P. | Pantaleona | |
| 29 | C. | Marty P. | Beatryksy | |
| 30 | P. | Abdona i Senny | Borzywoja | |
| 31 | S. | Ignacego Lojoli | Florentyny | |

| | Grecko-katolickie | Wsch. Słońca g. | m. | Zach. g. | m. |
|---|---|---|---|---|---|
| 19 | Judy | 4. | 10 | 7. | 56 |
| 20 | Meftodya Jep. | 4. | 11 | 7. | 56 |
| 21 | Julyana Mucz. | 4. | 12 | 7. | 56 |
| | Mat. 4, 18—23. | | | | |
| 22 | N. 2. Tił. Chr. Hł. 1. | 4. | 12 | 7. | 56 |
| 23 | Ahripiny M. | 4. | 13 | 7. | 55 |
| 24 | Rożd. s. Joana | 4. | 14 | 7. | 54 |
| 25 | Fewronyi | 4. | 14 | 7. | 53 |
| 26 | Dawyda Ftes. | 4. | 15 | 7. | 53 |
| 27 | Samsona Pr. | 4. | 16 | 7. | 53 |
| 28 | Kyra i Joana † | 4. | 16 | 7. | 52 |
| | Mat. 6, 22—23. | | | | |
| 29 | N. 3. Petr. i P. Hł. 2. | 4. | 17 | 7. | 51 |
| 30 | Sobor S.S. 12 Ap. | 4 | 18 | 7. | 50 |
| 1 | **Julyi.** Kosmy i D. | 4. | 19 | 7. | 49 |
| 2 | Położ. Ryz. Boh. | 4 | 20 | 7. | 48 |
| 3 | Jakynfta M. | 4. | 21 | 7. | 47 |
| 4 | Andreja A. | 4. | 22 | 7. | 46 |
| 5 | Aftanazya | 4. | 23 | 7. | 45 |
| | Mat. 8, 5—13. | | | | |
| 6 | N. 4. po Sosz. Hł. 3. | 4. | 24 | 7. | 44 |
| 7 | Ftomy Pr. | 4. | 25 | 7. | 43 |
| 8 | Prokopya M. | 4. | 26 | 7. | 42 |
| 9 | Pankratya Jep | 4. | 27 | 7. | 41 |
| 10 | S. S. 45 Mucz. | 4. | 28 | 7. | 40 |
| 11 | Jewftymyi | 4. | 29 | 7. | 39 |
| 12 | Prokła | 4. | 30 | 7. | 38 |
| | Mat. 8, 28—9. 1. | | | | |
| 13 | N. 5. po Sosz. Hł. 4. | 4. | 31 | 7. | 37 |
| 14 | Akyły Ap. | 4. | 32 | 7. | 36 |
| 15 | Kyraka M. | 4. | 34 | 7. | 35 |
| 16 | Aftynohema | 4. | 35 | 7. | 34 |
| 17 | Maryny M. | 4. | 37 | 7. | 33 |
| 18 | Jemyłyjana | 4. | 39 | 7. | 32 |
| 19 | Makryny P. | 4. | 40 | 7. | 31 |

**Odmiany księżyca i domyślny stan powietrza.**

Nów d. 7. o godz. 2 min. 54 wieczór. Powietrze niestałe.

Pierwsza kwadra d. 15. o godz. 7 min. 47 rano. Wiatr i dészcz.

Pełnia d. 21. o godz. 10 min. 35 wieczór. Piękna pogoda.

Ostatnia kwadra d. 29. o godz. 1 min. 14 rano Pogoda i wielkie upały.

---

W lipcu ubywa dzień od 1. do 31. o minut 57.

Długość dnia w przecięciu 15 godzin i minut 26.

Księżyc oddala się od ziemi d. 5. a przybliża się d. 20.

---

**Kalendarz żydowski.**

9. lipca 1. Abh. 17. lipca 9. Abh, Post, Spalenie świątyni.

---

**Przepowiednie według kalendarza 100-letniego.**

Lipiec. 1. mgły, od 3. do 5. dészcze, od 6. do 13. dészcze i wiatry, potém pogoda do końca.

---

**Przypowieści kalendarskie.**

W lipcu kłos się korzy
Że niesie dar Boży,
Który prosto stoi
To z pustoty swojéj.

Nawiedzenie Matki Boskiéj
Więc się chylą przed nią
kłoski.

| Dnie tyg. | | *Rzymsko-katolickie* | *Ewangielickie* | Pieg |
|---|---|---|---|---|
| 31. | | Św. Mark. 7, 31—37. | Łuk. 19, 41—48. 1 List Kor. 12. | |
| 1 | N. | C 11. po Swięt. Piotra w 0. | C 10. po św. Tr. Piotra | |
| 2 | P. | N. M. P. Anielskiéj | Gustawa | |
| 3 | W. | Zn. św. Szczepana | Augusta | |
| 4 | S. | Dominika Wyz. | Dominika | |
| 5 | C. | N. P. M. śnieżnéj | Oswalda | |
| 6 | P. | Przem. Pańskie ☺ | Przem. Pańskie | |
| 7 | S. | Kajetana Wyz. | Donata | |
| 32. | | Św. Łuk. 10, 23—27. | Łuk. 8, 9—14. 1 List Kor. 15. | |
| 8 | N. | C 12. po Swięt. Cyrjaka | C 11. po św. Tr. Cyrjaka | |
| 9 | P. | Romana i Sek. | Jarosława | |
| 10 | W. | Wawrzyńca Męcz. | Wawrzyńca | |
| 11 | S. | Zuzanny P. M. | Hermana | |
| 12 | C. | Klary P. | Klary P. | |
| 13 | P. | Hipolita M. ☽ | Świętopełki | |
| 14 | S. | Euzebjusza † | Euzebjusza | |
| 33. | | Św. Łuk. 17, 11—19. | Mark. 7, 31—37. | |
| 15 | N. | C 13. po Swięt. Wn. NMP. | C 12. po św. Tr. Wn. M.P. | |
| 16 | P. | Rocha Wyz. | Rocha | |
| 17 | W. | Liberata | Bertrama | |
| 18 | S. | Heleny | Augustyna | |
| 19 | C. | Ludwika B. | Sebalda | |
| 20 | P. | Stefana Kr. ♋ | Bernarda | |
| 21 | S. | Joanny Frem. | Adolfa | |
| 34. | | Św. Mat. 6, 24—34. | Łuk. 10, 23—37. List Galat. 3. | |
| 22 | N. | C 14. po Swięt. Jacka | C 13. po św. Tr. Tymot. | |
| 23 | P. | Filipa | Zacheusza | |
| 24 | W. | Bartłomieja Ap. | Bartłomieja | |
| 25 | S. | Ludwika Kr. | Ludwika Kr. | |
| 26 | C. | Zefiryny | Samuela | |
| 27 | P. | Przenies. św. Kaz. ☾ | Gebharda | |
| 28 | S. | Augustyna B. W. | Augusta | |
| 35. | | Św. Łuk. 7, 11—17. | Łuk. 17, 11—29. Gal. 5. | |
| 29 | N. | C 15. po Św. Scięcie J. | C 14. po ś. Tr. Scięc. J. | |
| 30 | P. | Róży z Limy | Benjamina | |
| 31 | W. | Rajmunda Wyz. | Pauliny | |

| | *Grecko-katolickie* | Wsch. Słońca g. | m. | Zach. g. | m. |
|---|---|---|---|---|---|
| | Mat. 9, 1—8. | | | | |
| 20 | N. 6. po Sosz. Hł. 5. | 4. | 41 | 7. | 29 |
| 21 | Symeona Pr. | 4. | 43 | 7. | 28 |
| 22 | Maryi Mahd. | 4. | 45 | 7. | 26 |
| 23 | Trofyma | 4. | 46 | 7. | 25 |
| 24 | Chrystyny | 4. | 47 | 7. | 24 |
| 25 | Usp. sw. Anny | 4. | 48 | 7. | 22 |
| 26 | Jermołaja | 4. | 50 | 7. | 20 |
| | Mat. 9, 27—33. | | | | |
| 27 | N. 7. po Sosz. Hł. 6. | 4. | 52 | 7. | 18 |
| 28 | Prohora | 4. | 53 | 7. | 15 |
| 29 | Kałłynyka | 4. | 54 | 7. | 13 |
| 30 | Siły A. | 4. | 55 | 7. | 11 |
| 31 | Jewdokima | 4. | 57 | 7. | 9 |
| 1 | **Awhust.** Pr. s. K. | 4. | 59 | 7. | 8 |
| 2 | Stefana | 5. | 0 | 7. | 6 |
| | Mat. 14, 14—22. | | | | |
| 3 | N. 8. po Sosz. Hł. 7. | 5. | 1 | 7. | 4 |
| 4 | 7 Otrokow | 5. | 3 | 7. | 3 |
| 5 | Jewsyhnia | 5. | 4 | 7. | 1 |
| 6 | Preobr. Hosp. | 5. | 5 | 6. | 59 |
| 7 | Dometya Pr. | 5. | 6 | 6. | 58 |
| 8 | Jemyłyana | 5. | 7 | 6. | 56 |
| 9 | Mafteja | 5. | 9 | 6. | 54 |
| | Mat. 14, 22—34. | | | | |
| 10 | N. 9. po Sosz. Hł. 8. | 5. | 11 | 6. | 52 |
| 11 | Jewpła Ar. | 5. | 12 | 6. | 50 |
| 12 | Ftoya Mucz. | 5. | 13 | 6. | 48 |
| 13 | Maksyma | 5. | 15 | 6. | 46 |
| 14 | Michea Pr. | 5. | 16 | 6. | 44 |
| 15 | Uspen. Bohor. | 5. | 17 | 6. | 42 |
| 16 | Dyodyma | 5. | 19 | 6. | 40 |
| | Mat. 17, 14—23. | | | | |
| 17 | N. 10. po Sosz. H. 1. | 5. | 21 | 6. | 39 |
| 18 | Flora i Ławra | 5. | 22 | 6. | 38 |
| 19 | Andreja Str. | 5. | 23 | 6. | 37 |

**Odmiany księżyca i domyślny stan powietrza.**

🌑 Nów d. 6. o godz. 5 min. 21 rano. Powietrze dżdżyste.

☽ Pierwsza kwadra d. 13. o godz. 2 min. 16 wieczór. Powietrze niestałe.

🌕 Pełnia d. 20. o godz. 6 min. 52 rano. Wiatr i dészcz.

☾ Ostatnia kwadra d. 27. o godz. 5 min. 48 wieczór. Pogoda.

---

W sierpniu ubywa dzień o 1 godzinę i minut 33.

Długość dnia w przecięciu 14 godzin 12 minut.

Księżyc oddala się od ziemi d. 1. i 29. a przybliża się d. 17.

---

**Kalendarz żydowski.**

8. sierpnia 1. Elul.

---

**Przepowiednie według kalendarza 100-letniego.**

Sierpień. Do 8. ciepło, 10. chłodno, 13. i 14. dészcz, od 15. do 20. pięknie, od 21. do 26. dészcz, potém pogoda do końca.

---

**Przypowieści kalendarskie.**

Kiedy sierpień następuje,
resztki zboża koszą,
Albo sierpem dożynają,
i przepiórki płoszą.

Na Maryi Wniebowzięcie
Najprzedniejsze żęcie,
A od Wniebowzięcia
Miéj w stodole połowę żęcia.

## *Wrzesień, (Septemwryi, September,*

| Dnie tyg. | | *Rzymsko-katolickie* | *Ewangielickie* | Pieg |
|---|---|---|---|---|
| 1 | S. | Idziego Op. | Egidjusza | |
| 2 | C. | Justa B. | Absolona | |
| 3 | P. | Bronisława i Izabeli | Miłosława | |
| 4 | S. | Rozalji P. | Rozalji | |
| 36. | | Św. Łuk. 14, 1--11. | Mat. 6, 24—34. Gal. 5. | |
| 5 | N. | C 16. po Św. Wawrz. | C 15. po św. Tr. Herkul. | |
| 6 | P. | Zacharjasza Pr. | Magnusa | |
| 7 | W. | Reginy P. | Reginy | |
| 8 | S. | Narodzenie N. P. M. | Narodz. M. P. | |
| 9 | C. | Gorgonjusza | Gorgonjusza | |
| 10 | P. | Mikołaja z Tolent. | Sotera | |
| 11 | S. | Prota M. ☽ | Prota | |
| 37. | | Św. Mat. 22, 35—46. | Łuk. 7, 11—17. List Efez. 3. | |
| 12 | N. | C 17. po Święt. Im. N.P.M. | C 16. po św. Tr. Syrusa | |
| 13 | P. | Aureljusza | Amata | |
| 14 | W. | Podwyż. † św. | Korneljusza | |
| 15 | S. | Such. Nikodema † | Nikodema | |
| 16 | C. | Ludmili M. | Eufemji | |
| 17 | P. | Lamberta B. † | Lamberta | |
| 18 | S. | Tomasza z Wil. † | Tytusa | |
| 38. | | Św. Mat. 9, 1—18. | Łuk. 14, 1—11. List Efez. 4. | |
| 19 | N. | C 18. po Święt. Januar. | C 17. po św. Tr. Sydonji | |
| 20 | P. | Eustachjusza | Faustyna | |
| 21 | W. | Mateusza Ew. | Mateusza | |
| 22 | S. | Maurycego | Maurycego | |
| 23 | C. | Tekli P. M. | Tekli | |
| 24 | P. | Gerarda B. M. | Gerarda | |
| 25 | S. | Kleofasa M. | Kleofasa | |
| 39. | | Św. Mat. 22, 15—25. | Mat. 22, 34—46. 1 List Kor. 1. | |
| 26 | N. | C 19. po Święt. Cypr. ☾ | C 18. po św. Tr. Cypr. | |
| 27 | P. | Kosmy i Dam. | Kosmy | |
| 28 | W. | Wacława Kr. | Wacława | |
| 29 | S. | **Michała Arch.** | Michała | |
| 30 | C. | Hieronima | Hieronima | |

| | *Grecko-katolickie* | Wsch. Słońca g. | m. | Zach. g. | m. |
|---|---|---|---|---|---|
| 20 | Samujła | 5. | 23 | 6. | 37 |
| 21 | Ftadeja A. | 5. | 25 | 6. | 33 |
| 22 | Ahaftonika | 5. | 27 | 6. | 31 |
| 23 | Łupa M. | 5. | 28 | 6. | 29 |
| | Mat. 18, 25—35. | | | | |
| 24 | N. 11. po Sosz. H. 2. | 5. | 29 | 6. | 27 |
| 25 | Warftołomeja | 5. | 31 | 6. | 25 |
| 26 | Adriana | 5. | 32 | 6. | 22 |
| 27 | Pymena | 5. | 34 | 6. | 20 |
| 28 | Mojseja | 5. | 35 | 6. | 18 |
| 29 | Usiek hł. Joan. | 5. | 36 | 6. | 16 |
| 30 | Ałeksandra | 5. | 38 | 6. | 14 |
| | Mat. 19, 16—26. | | | | |
| 31 | N. 12. po Sosz. H. 3. | 5. | 40 | 6. | 12 |
| 1 | **Sept.** Symeona | 5. | 41 | 6. | 10 |
| 2 | Mamanta M. | 5. | 42 | 6. | 8 |
| 3 | Anftyma M. | 5. | 44 | 6. | 6 |
| 4 | Wawyły Jep. | 5. | 45 | 6. | 4 |
| 5 | Zaharyi Pr. | 5. | 46 | 6. | 2 |
| 6 | Cz. Mich. Ar. | 5. | 48 | 5. | 59 |
| | Mat. 21, 33—42. | | | | |
| 7 | N. 13. po Sosz. H. 4. | 5. | 49 | 5. | 57 |
| 8 | Rożd. P. Bohor. | 5. | 50 | 5. | 56 |
| 9 | Joakima i Anny | 5. | 52 | 5. | 54 |
| 10 | Minodory Pr. | 5. | 53 | 5. | 52 |
| 11 | Fteodory Pr. | 5. | 54 | 5. | 49 |
| 12 | Awtomona | 5. | 56 | 5. | 47 |
| 13 | Kornyłya | 5. | 57 | 5. | 46 |
| | Mat. 22, 2—14. | | | | |
| 14 | N. 14. po Sosz. H. 5. | 5. | 58 | 5. | 43 |
| 15 | Nikity M. | 6. | 0 | 5. | 41 |
| 16 | Jewfym. W. M. | 6. | 1 | 5. | 39 |
| 17 | Sofyi | 6. | 3 | 5. | 37 |
| 18 | Jewmenyia Pr. | 6. | 4 | 5. | 35 |

**Odmiany księżyca i domyślny stan powietrza.**

Nów d. 4. o godz. 6 min. 25 wieczór. Dnie pogodne.

Pierwsza kwadra d. 11. o godz. 7 min. 58 wieczór. Posępno i wietrzno.

Pełnia d. 18. o godz. 5 min. 2 wieczór. Pogoda.

Ostatnia kwadra d. 26. o godz. 0 min. 42 wieczór. Bardzo dżdżysto.

W wrześniu ubywa dzień o 1 godzinę i minut 39. Długość dnia w przecięciu 12 godzin 32 minut.

Księżyc przybliża się do ziemi d. 13. a oddala się d. 26.

**Kalendarz żydowski.**

6. września 1. Tiszri, **Nowy Rok 5641.** 7. września 2. Tiszri, **Drugie Swięto Nowego Roku.** 8. września 3. Tiszri, **Post Gedalija.** 15. września 10. Tiszri, **Swięto Pojednania.** 20. września 15. Tiszri, **Pierwsze Święto kuczek.** 21. września 16. Tiszri, **Drugie Swięto kuczek.** 26. września 21. Tiszri, **Palmowe Święto.** 27. września 22. Tiszri, **Zgromadzenie czyli koniec kuczek.** 28. września 23. Tiszri, **Radość z prawa.**

**Przepowiednie według kalendarza 100-letniego.**

Wrzesień. Aż do 7. pogodnie, 8. szron, 9. pochmurno i zimno, od 13. do 16 pięknie, 18. deszcz, potém pięknie do 21., ku końcu deszcz i pochmurno.

**Przypowieści kalendarskie.**

Kiedy wrzesień przywiódł jesień, to i zboże młócą.
Jedni sobie trą na żarnach, drudzy na targ włóczą.

Wielka dla zbioru i siewu wygoda,
Gdy w święty Idzi przyświeca pogoda.

Na święty Idzi
Nikt głodem się nie powstydzi.

## Październik, (Oktowrij, October,

| Dnie tyg. | | Rzymsko-katolickie | Ewangielickie | Bieg |
|---|---|---|---|---|
| 1 | P. | Remigjusza | Remigjusza | |
| 2 | S. | Leodegara | Leodegara | |
| 40. | | Św. Jan 4, 46—53. | Mat. 9, 1—8. List Efez. 4. | |
| 3 | N. | C 20. po Święt. N.M.P.R. | C 19. po św. Tr. Kandy. | |
| 4 | P. | Franciszka Seraf. | Franciszka | |
| 5 | W. | Placyda | Fidesa | |
| 6 | S. | Brunona Wyz. | Estera | |
| 7 | C. | Justyny P. M. | Fryderyki | |
| 8 | P. | Brigidy wdowy | Pelagji | |
| 9 | S. | Dyonizego Areop. | Dyonizego | |
| 41. | | Św. Mat. 18, 23—35. | Mat. 22, 1—14. List Efez. 5. | |
| 10 | N. | C 21. po Święt. Franc. Bor. | C 20. po św. Tr. Gersona | |
| 11 | P. | Emilji i Placyda | Burkharda | |
| 12 | W. | Maksymiljana B. | Maksymiljana | |
| 13 | S. | Edwarda Kr. | Edwarda | |
| 14 | C. | Kaliksta Pap. | Kaliksta | |
| 15 | P. | **Teresy i Jadwigi** | Jadwigi | |
| 16 | S. | Gawła Op. | Galusa | |
| 42. | | Św. Mat. 22, 15—21. | Jan 4, 47—54 List Efez. 6. | |
| 17 | N. | C 22. po Święt. Poś. K. | C 21. po św. Tr. Florent. | |
| 18 | P. | Łukasza Ew. | Łukasza | |
| 19 | W. | Piotra z Al. | Ferdynanda | |
| 20 | S. | Felicjana | Wendelina | |
| 21 | C. | Urszuli P. M. | Urszuli | |
| 22 | P. | Korduli P. M. | Korduli | |
| 23 | S. | Jana Kap. | Seweryna | |
| 43. | | Św. Mat. 9, 18—26. | Mat. 18, 23—35. List Filip. 1. | |
| 24 | N. | C 23. po Święt. Jana Kant. | C 22. po św. Tr. Salomei | |
| 25 | P. | Kryspiny | Wilhelminy | |
| 26 | W. | Ewarysta Pap. | Ewarysta | |
| 27 | S. | Sabiny M. | Sabiny | |
| 28 | C. | Szymona i Judy Ap. | Szymona | |
| 29 | P. | Narcyza B. | Narcyza | |
| 30 | S. | Klaudjusza † | Hartmana | |
| 44. | | Św. Mat. 8, 23—27. | Mat. 8, 23—27. Rzym. 13. | |
| 31 | N. | C 24. po Święt. Wolfganga | C 23. po ś. Tr. Pam. refor. | |

| | *Grecko-katolickie* | Wsch. Słońca g. | m. | Zach. g. | m. |
|---|---|---|---|---|---|
| 19 | Trofyma | 6. | 5 | 5. | 33 |
| 20 | Eustafia | 6. | 6 | 5. | 30 |
| | Mat. 22, 35—46. | | | | |
| 21 | N. 15. po Sosz. H. 6. | 6. | 8 | 5. | 28 |
| 22 | Foky | 6. | 9 | 5. | 26 |
| 23 | Zacz. Joana | 6. | 11 | 5. | 24 |
| 24 | Ftekły M. | 6. | 13 | 5. | 22 |
| 25 | Jewrosyi | 6. | 15 | 5. | 20 |
| 26 | Joanna B. | 6. | 16 | 5. | 18 |
| 27 | Kałystrata | 6. | 17 | 5. | 16 |
| | Mat. 25, 14—23. | | | | |
| 28 | N. 16. po Sosz. H. 7. | 6. | 18 | 5. | 14 |
| 29 | Kyriaka | 6. | 19 | 5. | 12 |
| 30 | Hrehorya | 6. | 21 | 5. | 10 |
| 31 | **Oktow.** Pokr. P. B. | 6. | 22 | 5. | 8 |
| 1 | Kypriana | 6. | 23 | 5. | 6 |
| 2 | Dyonysya | 6. | 25 | 5. | 4 |
| 3 | Jerofteja | 6. | 27 | 5. | 2 |
| | Mat. 15, 21—28. | | | | |
| 4 | N. 17. po Sosz. H. 8. | 6. | 28 | 5. | 0 |
| 5 | Ftomy | 6. | 30 | 4. | 59 |
| 6 | Serhya | 6. | 31 | 4. | 57 |
| 7 | Pełahyi | 6. | 32 | 4. | 56 |
| 8 | Jakowa Ap. | 6. | 33 | 4. | 53 |
| 9 | Jewłampia | 6. | 35 | 4. | 51 |
| 10 | Fyłypa Ap. | 6. | 36 | 4. | 49 |
| | Łuk. 5, 1—11. | | | | |
| 11 | N. 18. po Sosz. H. 1. | 6. | 38 | 4. | 47 |
| 12 | Karpa M. | 6. | 40 | 4. | 46 |
| 13 | Nazarya i Par. | 6. | 41 | 4. | 44 |
| 14 | Jeftymya | 6. | 43 | 4. | 42 |
| 15 | Łonhina | 6. | 45 | 4. | 40 |
| 16 | Osyi Pr. | 6. | 47 | 4. | 38 |
| 17 | Łuki Ap. | 6. | 50 | 4. | 37 |
| | Łuk. 6, 31—36. | | | | |
| 18 | N. 19. po Sosz. H. 2. | 6. | 51 | 4. | 35 |

**Odmiany księżyca i domyślny stan powietrza.**

🌑 Nów d. 4. o godz. 6 min. 16 rano.
Wiatr i dészcz.

☽ Pierwsza kwadra d. 11. o godz. 2 min. 8 rano.
Chłodno i bardzo dżdżysto.

🌕 Pełnia d. 18. o godz. 5 min. 59 rano.
Posępno i wietrzno.

☾ Ostatnia kwadra d. 26. o godz. 8 min. 33 rano.
Zimno i mglisto.

---

W październiku ubywa dzień o 1 godzinę i minut 44.

Długość dnia w przecięciu 10 godzin i 48 minut.

Księżyc przybliża się do ziemi d. 8. a oddala się d. 24.

---

**Kalendarz żydowski.**

6. października 1. Marcheswan.

---

**Przepowiednie według kalendarza 100-letniego.**

Październik. Powietrze niestałe aż do 13., 15. zimno, od 22. do końca dészcz i zimno.

---

**Przypowieści kalendarskie.**

W październiku gospodarze kończą swoje siewy,
I kiermasze wyprawiają z wesołemi śpiewy.
W świętą Jadwigę jeśli dészcz nie pada
To do kapusty miodu Bóg dokłada.

| Dnie | tyg. | *Rzymsko-katolickie* | *Ewangielickie* | Bieg |
|---|---|---|---|---|
| 1 | P. | Wszystkich Świętych | Wszystkich Świętych | |
| 2 | W. | Dzień zaduszny | Pam. zad. | |
| 3 | S. | Huberta B. | Bogumiła | |
| 4 | C. | Karola Bor. | Karola | |
| 5 | P. | Elżbiety M. | Emeryka | |
| 6 | S. | Leonarda W. | Leonarda | |
| 45. | | Św. Mat. 13, 24—30. | Mat. 13, 24—30. List Kol. 3. | |
| 7 | N. | C 25. po Święt. Herkul. | C 24. po św. Tr. Erdmana | |
| 8 | P. | 4 Koronatów | Klaudji | |
| 9 | W. | Teodora M. | Teodora | |
| 10 | S. | Andrzeja z Aw. | Probusa | |
| 11 | C. | Marcina B. | Marcina Lut. | |
| 12 | P. | Marcina P. | Jonasza | |
| 13 | S. | Eugenjusza | Brykcjusza | |
| 46. | | Św. Mat. 13, 31—36. | Mat. 22, 15—22. List Filip. 3. | |
| 14 | N. | C 26. po Święt. Op. P. M. | C 25. po św. Tr. Lewina | |
| 15 | P. | Leopolda W. | Leopolda | |
| 16 | W. | Otmara Op. | Otona | |
| 17 | S. | Salomei P. | Hugona | |
| 18 | C. | Otona Op. | Gelazjusza | |
| 19 | P. | Elżbiety Kr. Wd. | Elżbiety | |
| 20 | S. | Feliksa de Val. | Eulalji | |
| 47. | | Św. Mat. 24, 15—36. | Mat. 9, 18—26. List Kol. 1. | |
| 21 | N. | C 27. po Święt. Ofiar. P. M. | C 26. po św. Tr. Emeryka | |
| 22 | P. | Cecylji P. | Cecylji | |
| 23 | W. | Klemensa Pap. | Klemensa | |
| 24 | S. | Emilji, Jana od Krz. | Emilji | |
| 25 | C. | Katarzyny P. M. | Katarzyny | |
| 26 | P. | Konrada B. | Konrada | |
| 27 | S. | Wirgiljusza | Gintera | |
| 48. | | Św. Łuk. 21, 25—33. | Mat. 21, 1—9. List Rzym. 13. | |
| 28 | N. | C 1. Adw. Krescent. | C 1. Adw. Rufina | |
| 29 | P. | Saturnina | Waltera | |
| 30 | W. | Jędrzeja Ap. | Andrzeja | |

| | *Grecko-katolickie* | Wsch. Słońca g. | m. | Zach. g. | m. |
|---|---|---|---|---|---|
| 0 | Artemija | 6. | 52 | 4. | 35 |
| 1 | Iłaryona Pr. | 6. | 54 | 4. | 33 |
| 2 | Awerkyja Jep. | 6. | 56 | 4. | 30 |
| 3 | Jakowa | 6. | 58 | 4. | 29 |
| 4 | Arefty | 7. | 0 | 4. | 28 |
| 5 | Markiana | 7. | 1 | 4. | 26 |
| | Łuk. 7, 11—16. | | | | |
| 6 | N. 20. po Sosz. H. 3. | 7. | 3 | 4. | 25 |
| 7 | Nestora M. | 7. | 5 | 4. | 24 |
| 8 | Terentya M. | 7. | 6 | 4. | 22 |
| 9 | Anastazyi | 7. | 7 | 4. | 21 |
| 0 | Zynowija | 7. | 9 | 4. | 20 |
| 1 | Stachyja Ap. | 7. | 10 | 4. | 18 |
| 1 | **Noj.** Kosmy i D. | 7. | 12 | 4. | 17 |
| | Łuk. 8, 5—15. | | | | |
| 2 | N. 21. po Sosz. H. 4. | 7. | 13 | 4. | 16 |
| 3 | Akepsyna M. | 7. | 15 | 4. | 15 |
| 4 | Joannyka Pr. | 7. | 16 | 4. | 14 |
| 5 | Hałaktiona | 7. | 18 | 4. | 13 |
| 6 | Pawła Arch. | 7. | 19 | 4. | 12 |
| 7 | Jerona M. | 7. | 20 | 4. | 11 |
| 8 | Sobor s. Mychaiła | 7. | 22 | 4. | 10 |
| | Łuk. 16, 19—31. | | | | |
| 9 | N. 22. po Sosz. H. 5. | 7. | 24 | 4. | 10 |
| 0 | Erasta | 7. | 25 | 4. | 9 |
| 1 | Myny M. | 7. | 26 | 4. | 8 |
| 2 | Joanna Mył. | 7. | 27 | 4. | 8 |
| 3 | Joanna Złot. | 7. | 28 | 4. | 7 |
| 4 | Fyłypa Ap. | 7. | 29 | 4. | 5 |
| 5 | Hurya M. | 7. | 31 | 4. | 5 |
| | Łuk. 8, 26—39. | | | | |
| 16 | N. 23. po Sosz. H. 6. | 7. | 32 | 4. | 4 |
| 17 | Hryhorya | 7. | 33 | 4. | 4 |
| 18 | Platona M. | 7. | 34 | 4. | 3 |

**Odmiany księżyca i domyślny stan powietrza.**

Nów d. 2. o godz. 5 min. 28 wieczór. Powietrze przyjemne.

Pierwsza kwadra d. 9. o godz. 9 min. 53 rano. Zimno i dżdżysto.

Pełnia d. 16. o godz. 10 min. 12 wieczór. Przymrozki i ostre powietrze.

Ostatnia kwadra d. 25. o godz. 3 min. 39 rano. Śnieg i wicher.

---

W listopadzie ubywa dzień o 1 godzinę i minut 11.

Długość dnia w przecięciu 9 godzin i 17 minut.

Księżyc przybliża się do ziemi d. 4. a oddala się d. 20.

---

**Kalendarz żydowski.**

4. listopada 1. Kislew. 28. listopada 25. Kislew, Poświęcenie Świątyni Chanuka.

---

**Przepowiednie według kalendarza 100-letniego.**

Listopad. Do 16. dészcze, 23. pogodnie i zimno, przy końcu mrozy.

---

**Przypowieści kalendarskie.**

W listopadzie kobieciny
przędą swe kądziele,
A co święto, co niedzielę,
brzęczy gdzieś wesele.
W listopadzie grzmi —
Rolnik wiosnę śni.
Na Wszystkich Świętych,
jeśli ziemia skrzepła
To będzie zima ciepła,
A jak dészcz —
To trzeba będzie w piec wleść.

## Grudzień, (Dekemwryi, December,

| Dnie tyg. | | Rzymsko-katolickie | Ewangielickie | Bieg |
|---|---|---|---|---|
| 1 | S. | Eligjusza B. | Longina | |
| 2 | C. | Bibiany P. | Aurelji | |
| 3 | P. | Franciszka Ks. | Dymitra | |
| 4 | S. | Barbary | Barbary | |
| 49. | | Św. Mat. 11, 2—10. | Łuk. 21, 25—36. List Rzym. 14. | |
| 5 | N. | C 2. Adw. Saby Op. | C 2. Adw. Amosa | |
| 6 | P. | Mikołaja | Mikołaja | |
| 7 | W. | Ambrożego † | Agaty | |
| 8 | S. | Niep. Pocz. N. M. P. | Dzień pokuty | |
| 9 | C. | Leokadji | Joachima | |
| 10 | P. | N. M. P. Loret. | Judyty | |
| 11 | S. | Damazego | Damazego | |
| 50. | | Św. Jan 1, 19—28. | Mat. 11, 2—10. List 2 do Kor. 4. | |
| 12 | N. | C 3. Adw. Maksent. | C 3. Adw. Otylji | |
| 13 | P. | Łucji i Otyl. | Łucji | |
| 14 | W. | Nikaz. i Spir. | Nikazego | |
| 15 | S. | Such. Walerjana † | Ignacego | |
| 16 | C. | Adelajdy P. | Ananjasza | |
| 17 | P. | Łazarza B. † | Łazarza | |
| 18 | S. | Gracjana † | Wunibalda | |
| 51. | | Św. Łuk. 3, 1—14. | Jan 1, 19—28. Filip. 4. | |
| 19 | N. | C 4. Adw. Nemezjusza | C 4. Adw. Abrahama | |
| 20 | P. | Kryst. i Teofila | Izaka | |
| 21 | W. | Tomasza Ap. | Tomasza | |
| 22 | S. | Zenona M. | Beaty | |
| 23 | C. | Wiktorji P. | Dagoberta | |
| 24 | P. | Wig. Adama i E. ☾ † | Adama i Ewy | |
| 25 | S. | Boże Narodzenie | Boże Narodzenie | |
| 52. | | Św. Łuk. 2, 1—14. | Łuk. 2, 33—40. Gal. 4. | |
| 26 | N. | C Szczepana M. | C Szczepana | |
| 27 | P. | Jana Ew. | Jana | |
| 28 | W. | Młodzianków | Młodzianków | |
| 29 | S. | Tomasza B. | Jonatana | |
| 30 | C. | Dawida Kr. | Dawida | |
| 31 | P. | Sylwestra Pap. | Sylwestra | |

| | *Grecko-katolickie* | Wsch. Słońca g. | m. | Zach. g. | m. |
|---|---|---|---|---|---|
| 19 | Awdyja Pr. | 7. | 34 | 4. | 3 |
| 20 | Hryhorya Dek. | 7. | 37 | 4. | 1 |
| 21 | **Wowed. Bohor.** | 7. | 38 | 4. | 0 |
| 22 | Fyłymona Ap. | 7. | 39 | 4. | 0 |
| | Łuk. 8, 40—55. | | | | |
| 23 | **N. 24. po Sosz. H. 7.** | 7. | 40 | 4. | 0 |
| 24 | Ekateryny | 7. | 41 | 4. | 0 |
| 25 | Kłymenta | 7. | 42 | 4. | 0 |
| 26 | Ałypia | 7. | 44 | 4. | 0 |
| 27 | Jakowa M. | 7. | 45 | 3. | 59 |
| 28 | Stefana M. | 7. | 46 | 3. | 59 |
| 29 | Paramona | 7. | 47 | 3. | 59 |
| | Łuk. 10, 25—37. | | | | |
| 30 | **N. 25. po Sosz. H. 8.** | 7. | 48 | 3. | 59 |
| 1 | Dek. Nauma | 7. | 49 | 3. | 59 |
| 2 | Awakuma | 7. | 50 | 3. | 59 |
| 3 | Sofonia Pr. | 7. | 51 | 3. | 59 |
| 4 | Warwary M. | 7. | 52 | 4. | 0 |
| 5 | Sawwy Osw. | 7. | 53 | 4. | 0 |
| 6 | **Nykołaja** | 7. | 54 | 4. | 1 |
| | Łuk. 12, 16—21. | | | | |
| 7 | **N. 26. po Sosz. H. I.** | 7. | 54 | 4. | 1 |
| 8 | Pałapia Pr. | 7. | 55 | 4. | 1 |
| 9 | **Zaczat. Bohor.** | 7. | 56 | 4. | 2 |
| 10 | Myny Ermoh. | 7. | 57 | 4. | 2 |
| 11 | Danyiła St. | 7. | 57 | 4. | 3 |
| 12 | Spirydiona | 7. | 57 | 4. | 3 |
| 13 | Ewstratyja Jep. | 7. | 57 | 4. | 4 |
| | Łuk. 14, 16—24. | | | | |
| 14 | **N. 27. po Sosz. H. 2.** | 7. | 58 | 4. | 5 |
| 15 | Jełefterya | 7. | 58 | 4. | 6 |
| 16 | Ahhea Pr. | 7. | 58 | 4. | 7 |
| 17 | Danyiła Pr. | 7. | 58 | 4. | 7 |
| 18 | Sewastyana M. | 7. | 58 | 4. | 8 |
| 19 | Wonyfatya M. | 7. | 58 | 4. | 8 |

**Odmiany księżyca i domyślny stan powietrza.**

🌑 Nów d. 2. o godz. 4 min. 29 rano.
Powietrze posępne.

☽ Pierwsza kwadra d. 8. o godz. 8 min. 12 wieczór.
Zimno i śnieg.

🌕 Pełnia dnia 16. o godz. 5 min. 9 wieczór.
Powietrze łagodne.

☾ Ostatnia kwadra d. 24. o godz. 8 min. 30 wieczór.
Pogoda i mroźno.

🌑 Nów d. 31. o godz. 3 min. 29 wieczór.
Pogoda, przytém powietrze łagodne.

---

W grudniu ubywa dzień o minut 16.

Długość dnia w przecięciu 8 godzin i 30 minut.

Księżyc przybliża się do ziemi d. 3. i 31. a oddala się dnia 18.

---

**Kalendarz żydowski.**

3. grudnia 1. Tebeth. 12. grudnia 10. Tebeth, Post, Oblęż. Jerozol.

---

**Przepowiednie według kalendarza 100-letniego.**

Grudzień. 1. zimno, 4. śnieg, od 5. do 12. dészcze, od 13. do 16. pochmurno i śnieg, od 22. aż do końca mroźno.

---

**Przypowieści kalendarskie.**

Kiedy na Barbarę mróz
To szykuj chłopie wóz,
A jak odtajanie
To szykuj sanie.
Słota w dzień Adama i Ewy
To strzeż od zimna chlewy.

*

# Kalendarz rolniczy i ogrodniczy.

*Styczeń.* Młócić zboże dla otrzymania słomy na paszę i podściół. Przy silnych mrozach młócić koniczynę i łubin. Łubin cienko na spichrzu rozścielać, aby się nie zagrzał. Robić powrósła, a dla otrzymania prostéj słomy młócić do dnia cepami. Ścinać drzewo na budowle, na narzędzia rolnicze i zwozić przy dobréj drodze. Lodownię nabić lodem. Stajnie, obory, chlewy, owczarnie opatrzeć od mrozów. Nie żałować podściółki dla cielnych krów, prośnych macior i kotnych owiec. Zakładać inspekta.

*Luty.* Kończyć młockę. Przysposabiać powrosła i maty słomiane. Scinać budulec i przysposabiać sążnie opałowe; jeżeli dobra sanna, zwozić drzewo z lasu, jeżeli odwilż, przepuszczać wody z pól, wywozić gnoje, narzędzia rolnicze sporządzać, jeżeli puści, bronować podorywki jesienne i na piaskach orać pod owies i jarkę. Oczyszczać drzewa w ogrodach.

*Marzec.* Drób dobrze utrzymany niesie i wysiaduje jaja. Wieprze dokarmiać i zabijać na szynki i słoninę, przysposobić wędliny na całe lato. Sadzić drzewka i oczyszczać ogrody. Umowy Ś.-Jańskie wymawiać lub odnawiać. Siew owsa, grochu, jarki i części mieszanek; bronować, oczyszczać i nawodniać łąki, spuszczać wodę z pól. Zrewidować kopce z okopowemi i przebrać psujące się. Rąbanie drzewa w lesie kończyć do połowy miesiąca. Wierzby obcinać i zamoczyć lub zaraz wysadzić. Sośninę i brzezinę wysiewać. Cegielnie, wapielnie i torfiarnie przygotować.

*Kwiecień.* Obsiewać ogrody. Sadzić i szczepić drzewka. Pielęgnować młody drób. Kończyć siew owsa, grochu, jarki. Siać wykę, len, koniczynę w oziminach i na jęczmieniu. Zasiać rozsadę kapusty i brukwi, jeżeli można, rozpocząć siew buraków, marchwi pastewnéj, kukurudzy (koński zab) i kartofli. Obkopywać rzepak zim. w rzędy uprawiany. Zbierać kamienie na koniczynie i takową zbronować, mianowicie silnie zdrapać żelaznemi bronami lucernę. Pszenicę włóczyć, skoro rola obeschnie.

*Maj.* Kończyć siewy jare, jęczmień czterorzędowy, proso i tatarkę. Wykę na nasienie siać. Mieszanki późniejsze siać. Drugi siew lnu. Sadzenie kartofli, dokończenie siewu buraków, marchwi pastewnéj i kukurydzy. Sadzić rozsadę kapusty i brukwi. Kończyć reparację dachów, płotów, rowów i mostów. Robić zapas masła i serów. Siew rzepaków letnich i lnianki. Pielenie pszenicy, wczesnych buraków i okopywanie wysadków nasiennych. Gipsować koniczynę i rośliny groszkowe. Wywozić gnój i przyorywać pod rzepak zimowy. Wystawić pszczoły do pasieki. Przygotować do mycia i strzyży owce.

*Czerwiec.* Konfitury z agrestu, porzeczek, poziomek i truskawek, sok malinowy przysposabiać. Zbierać rośliny gorzkie lekarskie i kwiat lipowy. Podorywać ugory i pilnować z bronowaniem, aby rola nie zasklepiła się i nie stwardniała, o czem łatwo

zapomnieć można przy sianokosach, a jeszcze bardziéj przy żniwach. Bronować kartofle skoro zaczynają wyrastać z ziemi. Opleć i przerywać buraki, a w końcu grackami konnemi brózdy wycinać.

*Lipiec.* Przygotować wozy, drabiny, grabie, widły, rańtuchy. Stodoły oczyścić. Młócarnie wyreperować. Klepiska wyrównać. Pilnować roli, mianowicie uprawiając podług nauki Rosenberga-Lipińskiego. Ostatnia orka pod rzepak i raps. Podorywka koniczynisk i pastwisk. Zbiór rzepaku i rapsu. Żniwo żyta i pszenicy. Zbiór owsa, rychliku, jęczmienia i mieszanki sianéj na nawozach. Szczególną dawać baczność na obchodzenie się z ogniem na wsi i w lasach, gdyż w tym miesiącu panują częste pożary.

*Sierpień.* Jak w lipcu tak i w tym miesiącu gospodynie smarzą i marynują owoce, oraz zakwaszają ogórki. Zbiór i zwózka żyta, pszenicy, grochu, owsa, wyki, prosa, hreczki, lnu, rzepaków letnich spóźnionych. Młócić pszenicę i żyto do siewu. Wykończyć orki pod oziminę i siew na lżejszych gruntach. Zbiór jabłek i gruszek do zachowania. Zbierać nasienie brzeziny. Przypomina się, aby w czasie żniw nie omieszkać bronować roli w właściwéj porze.

*Wrzesień.* Zbiór jabłek, gruszek, śliwek, oraz jarzyn ogrodowych. Kopanie kartofli. Zbieranie żołędzi i buczyny. Siew żyta i pszenicy dobry rolnik kończy w tym miesiącu. Rżyska należy natychmiast podorywać po uprzątnieciu zboża. Rzepak zimowy w rzędowéj uprawie obredlić. Kosić i suszyć potrawy. Rozpoczynać kopanie buraków. Przygotować gorzelnię, browar oraz słód dla nich. Wybrać miód. Zarybić stawy jałowe. Zbierać nasiona klonu i jodły.

*Październik.* Resztę warzyw wykopać i zakopcować. Buraki kopać i do fabryki odstawiać, lub dla inwentarzy w kopce składać. Szparagi gnojem i ziemią nakryć. Sadzić drzewka owocowe i leśne. Świnie wypchane zielskiem zacząć lepiéj karmić dla utuczenia. Podorywać pod jarzyny, a głęboko odwrócić pod buraki. Inwentarz żywy powoli przyzwyczajać do suchéj paszy. Zasiewać sośninę z brzeziną i wysadzać młode sosenki. Również pora siać żołędź, buczynę, kasztany dzikie, grab, klon i t. p.

*Listopad.* Zbierać jagody jałowcowe na lekarstwo dla owiec i bydła. Zaasekurować zbiory z uwzględnieniem omłotu i wyprzedaży zboża. Kończyć podorywki jesienne, a gdy nastaną silniejsze przymrozki, pochować narzędzia rolnicze pod dach aby nie gniły. Gnoje wywieźć i przyorać. Sadzić drzewka w lasach. Zbierać nasiona jesionu, grabu, olszyny. W tym miesiącu rozpoczynają się cięcia w lesie. Młócić zboża. Pospuszczać wody z pól ozimych, koniczyn i podorań.

*Grudzień.* Maciory prośne dobrze karmić. Wieprze dotuczać zbożem. Drzewka w ogrodzie zabezpieczyć od mrozów i zajęcy obwiązaniem słomy. Zwozić materjał budowlany i sążnie z lasu. W ogóle z ustaniem robót w polu, inwentarz żywy używać do wywózki szlamu, marglu, kompostu i innych nawozów, które w porządnem gospodarstwie zawsze powinny być w zapasie.

# Rodzina cesarska panująca w Austrji.

*Franciszek Józef Karol* cesarz Austrji, król węgierski itd., ur. 18. sierpnia 1830 r., wstąpił na tron 2. grudnia 1848; zaśl. 24. kwietnia 1854 z *Elżbietą Eugenją*, księżniczką bawarską, ur. 24. grudnia 1837. — Dzieci cesarskie: *Zofja*, ur. 5. marca 1855, † 29. maja 1857; *Gizella*, ur. 12. lipca 1856, zaśl. 20. kwietnia 1873 z Leopoldem, ks. bawarskim; *Rudolf Franciszek Karol Józef*, ur. 21. sierpnia 1858; *Marja Walerja*, ur. 22. kwietnia 1868.

*Bracia Jego ces. Mości:* 1. arcyks. *Ferd. Maksymiljan I.* cesarz Meksyku, ur. 6. lipca 1832, † 19. czerwca 1867. — 2. arcyks. *Karol Ludwik*, ur. 30. lipca 1833, wdowiec po Anuncjacie ks. sycylijskiéj zmarłej 4. maja 1871. Dzieci z tego małżeństwa: *Franciszek Ferdynand*, ur. 18. grudnia 1863; *Otton Franciszek Józef*, ur. 21. kwietnia 1865; *Ferdynand Karol*, ur. 27. grudnia 1868; *Małgorzata Sofja*, ur. 13. maja 1870. — 3. arcyks. *Ludwik Józef*, ur. 15. maja 1842.

*Stryj i ciotki Jego ces. Mości: Ferdynand I.* ces. Austrji, ur. 19. kwietnia 1793, zaśl. 12. lutego 1831 z *Marją Anną Kar.*, zrzekł się tronu r. 1848, † 29. czerwca 1875. — 2. *Marja Klementyna*, ur. 1. marca 1798.

*Najjaśniejszego ces. Franciszka I. bracia i potomkowie ich*: 1. Arc. *Jan Baptyst*, ur. 20. stycznia 1782, † 1859. — 2. Arc. *Rajnera* † dzieci, arcyksiążęta: a) *Leopold*, ur. 6. czerwca 1823, b) *Ernest*, ur. 8. sierpnia 1824, c) *Zygmunt*, ur. 7. stycznia 1826, d) *Rajner*, ur. 11. stycznia 1827, zaśl. 21. lutego 1852 z *Marją* córką arc. Karola, e) *Henryk*, ur. 9. maja 1828, zaśl. 4. lutego 1868 z Marją Hofman. — 3. Arc. *Ludwik*, ur. 13. grudnia 1764. — 4. Arc. *Karola* † dzieci: a) *Marja Teresa*, ur. 31. lipca 1816, królowa neapolitańska, b) arc. *Albrecht*, ur. 3. sierpnia 1817, zaśl. z arc. *Hildegardą* †, dzieci jego: *Teresa*, ur. 1845, zaśl. 18. stycznia 1865 ks. *Filipowi* wirtembergskiemu i *Matylda*, ur. 1849, † 1867, c) arc. *Karol Ferdynand*, ur. 29. lipca 1818, d) arc. *Marja Karolina*, ur. 10. września 1825, e) arc. *Wilhelm*, ur. 21. kwietnia 1827. — 5. Arc. *Józefa* dzieci: a) arc. *Stefan*, ur. 1817, b) arc. *Elżbieta*, ur. 1831, c) arc. *Józef*, ur. 1833, d) arc. *Marja*, ur. 1836, zaśl. *Leopoldowi*, królewiczowi belgijskiemu. — 6. *Ferdynanda* † wielk. ks. toskańskiego, syn: *Leopold II.* dziedziczny wielki ks. toskański, ur. 3. października 1797. Tegoż dzieci: arc. a) *Izabella*, b) *Ferdynand*, c) *Karol*, d) *Marja Ludwika*, e) *Ludwik*, f) *Jan Nep.*

# Nowe tabele stęplowe, mają ważność od I. maja 1876.

| SKALA I. na weksle | zł. | ct. | SKALA II. na dokumenta prawne | zł. | ct. | SKALA III. na odsetki | zł. | ct. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| do 75 zł. w. a. | — | 5 | do 20 zł. w. a. | — | 7 | do 10 zł. w. a. | — | 7 |
| nad 75 „ „ | — | 10 | nad 20 „ „ | — | 13 | nad 10 „ „ | — | 13 |
| „ 150 „ „ | — | 20 | „ 40 „ „ | — | 19 | „ 20 „ „ | — | 19 |
| „ 300 „ „ | — | 30 | „ 60 „ „ | — | 32 | „ 30 „ „ | — | 32 |
| „ 450 „ „ | — | 40 | „ 100 „ „ | — | 63 | „ 50 „ „ | — | 63 |
| „ 600 „ „ | — | 50 | „ 200 „ „ | — | 94 | „ 100 „ „ | — | 94 |
| „ 750 „ „ | — | 60 | „ 300 „ „ | 1 | 25 | „ 150 „ „ | 1 | 25 |
| „ 900 „ „ | — | 70 | „ 400 „ „ | 2 | 50 | „ 200 „ „ | 2 | 50 |
| „ 1050 „ „ | — | 80 | „ 800 „ „ | 3 | 75 | „ 400 „ „ | 3 | 75 |
| „ 1200 „ „ | — | 90 | „ 1200 „ „ | 5 | — | „ 600 „ „ | 5 | — |
| „ 1350 „ „ | 1 | — | „ 1600 „ „ | 6 | 25 | „ 800 „ „ | 6 | 25 |
| „ 1500 „ „ | 2 | — | „ 2000 „ „ | 7 | 50 | „ 1000 „ „ | 7 | 50 |
| „ 3000 „ „ | 3 | — | „ 2400 „ „ | 10 | — | „ 1200 „ „ | 10 | — |
| „ 4500 „ „ | 4 | — | „ 3200 „ „ | 12 | 50 | „ 1600 „ „ | 12 | 50 |
| „ 6000 „ „ | 5 | — | „ 4000 „ „ | 15 | — | „ 2000 „ „ | 15 | — |
| „ 7500 „ „ | 6 | — | „ 4800 „ „ | 17 | 50 | „ 2400 „ „ | 17 | 50 |
| „ 9000 „ „ | 7 | — | „ 5600 „ „ | 20 | — | „ 2800 „ „ | 20 | — |
| „ 10500 „ „ | 8 | — | „ 6400 „ „ | 22 | 50 | „ 3200 „ „ | 22 | 50 |
| „ 12000 „ „ | 9 | — | „ 7200 „ „ | 25 | — | „ 3600 „ „ | 25 | — |
| itd. za każde 1500 zł. wyżéj dodaje się stępel po 1 zł., suma niższa od 1500 zł. za całkowitą wzięta być winna. | | | Wyżéj 8000 zł., za każde 400 zł. dodaje się stępel po 1 zł. 25 ct. | | | Wyżéj 4000 zł., za każde 200 zł. dodaje się stępel po 1 zł. 25 ct. | | |

## Niektóre objaśnienia pocztowe.

Oprócz kopert markowanych po 5, 10, 15, 20 ct., są jeszcze kartki korespondencyjne po 2 ct., na których można przesłać w całéj monarchji krótkie niezapieczętowane korespondencje.

Od listów przesyłanych w miejscu po 3 ct. od 15 gramów. Za takież listy niefrankowane opłaca się 6 ct. Listy do całéj Austrji, Prus i Niemiec 5 ct. od 15 gramów, aż do 250 gramów 10 ct., niefrankowane opłaca odbiorca podwójnie.

*Marki.* Marki pocztowe znajdują się po 2, 3, 5, 10, 15, 20, 25 i 50 ct. Porto od listów zwyczajnych w kraju i za granicę do Niemiec 5 ct., do Serbji 7 ct., do Anglji, Belgji, Francji, Grecji, Rzymu, Mołdawji, Wołoszczyzny, Norwegji, Rosji, Polski i do zabranych prowincyj, Szwajcarji, Szwecji, Turcji europejskiéj, Włoch, Danji, Ameryki mianowicie do Stanów Zjednoczonych przez Anglję po 10 ct., do innych krajów Ameryki, różnie stosownie do odległości po 10, 14, 28 aż do 78 ct.

Za pośrednictwem urzędów pocztowych można przekazywać wypłaty w kraju do wysokości 100 złr.

Do Wiednia wolno przesyłać aż do 5000 złr. Do celniejszych zaś miast monarchji do wysokości 1000 złr.

Uskuteczniać także można przesyłki pieniężne za pośrednictwem telegrafów.

Próby towarów kupieckich wartość się nie oznacza. Druki wszelkie, korekty i książki można przesyłać pod opaską za opłatą od 50 gramów po 2 ct.

---

## Telegrafy.

Depesze telegraficzne mogą być we wszystkich językach nadawane i do wszystkich krajów i okolic rozsyłane t. j. na całéj przestrzeni zaprowadzonych sieci elektrycznych. Jeżeli zaś np. niema w jakiem miejscu telegrafu, przesłana doń depesza będzie z ostatniéj stacji pocztą lub przez umyślnego posłańca wyprawiona. Adres jednak musi być dokładny, aby przy doręczeniu niezaszła żadna omyłka lub przeszkoda. Dla tego też zawsze na depeszach wymieniać trzeba: miejsce, ulicę, numer domu a przy pospolitszych nazwiskach, stan i sposób utrzymania adresata.

Opłata za przesyłkę depesz w obrębie monarchji Austro-węgierskiéj wynosi:

a) 24 ct. stęplowego za każdy telegram bez wyjątku; b) 2 ct. taksy od każdego wyrazu. Przy depeszach miejscowych opłaca się tylko połowę wyżéj wspomnianego stęplowego.

Odpowiedzi telegraficzne, na posłane depesze, muszą być zawsze naprzód opłacone, przynajmniéj do wysokości dziesięciu wyrazów, lub i więcéj ale nigdy nad trzydzieści.

Do Niemiec, bez względu na oddalenie opłata wynosi: a) 24 ct. stęplowego; b) 6 ct. za każdy wyraz.

Ameryka przez N. York 22 zł. 40 ct., Ameryka do innych krajów 23 zł. 70 ct., Anglja 3 zł. 60 ct., Belgja 2 zł., Danja 2 zł., Francja 2 zł. 60 ct., Grecja 2 zł. 80 ct., Moldo-Wołoszczyzna 1 zł. 20 ct., Szwecja 2 zł. 80 ct., Norwegja 3 zł., Rosja europejska 3 zł. 20 ct., Omsk i Tiumeń 6 zł. 40 ct., do królestwa k. i prowincyj zabranych 1 zł. 20 ct., Irkutsk, Kiachta, Krasnojarsk 9 zł. 60 ct., Hiszpanja 3 zł. 60 ct., Serbja 80 ct., Szwajcarja 1 zł. 20 ct., Turcja europejska 2 zł. 80 ct., Portugalja 4 zł., Włochy północ. 80 ct., Włochy południ. 1 zł. 20 ct., Rumunja 1 zł. 20 ct.

---

UWAGA. Do Ameryki opłaca się srebrem.

**Zwracamy uwagę na jarmarki, które w głównym spisie nie są umieszczone, i na niektóre zmiany tychże w dodatku pod lit. B.**

---

# Spis jarmarków.

## A.

## 1. Na Szląsku austryjackim.

**Cieszyn:** jarmark w pierwszy poniedziałek marca; w drugi poniedziałek maja, albo jeżeli na ten tydzień krzyżowe dni przypadają, w trzeci poniedziałek maja; w drugi poniedziałek lipca; w drugi poniedziałek września; w drugi poniedziałek listopada.

**Bielsk:** po niedzieli suchéj, po św. Janie, 15 września, na Mikołaja, zawsze w poniedz. przypadający. Jarmarki na wełnę: 22 maja, 10 paźdz. Na bydło: w poniedz. po św. Trójcy, na ś. Jana, na ś. Jakóba, 15 września.

**Bogumin:** na ś. Adelgundę, w poniedz. po 2 niedzieli po Wielkiéjnocy, na Nawiedzenie PM., na Michała. Na konie i bydło w dniu przed każdym jarmarkiem. Główne targi tygodniowe: we środę przed Wielkanocą, przed Świątkami, przed Bożém narodzeniem.

**Frydek:** w poniedz. po trzech królach, w poniedz. przed św. Józefem, w poniedz. po św. Filipie i Jakóbie, w poniedz. przed św. Janem Chrzcicielem, na św. Jakóba, w poniedz. po św. Michale, w poniedz. przed św. Katarzyną. Dwa dni przed każdym jarmarkiem targ na konie i bydło, targi tygodniowe co poniedziałek i piątek.

**Frysztat:** na nawrócenie ś. Pawła, we środę przed kwietnią niedzielą, w poniedz. po niedzieli 6 po Wielkiéjnocy, we wtorek przed ś. Bartłomiejem, na św. Szymona i Judę. Targ tygodniowy we wtorek.

**Jabłonków:** w poniedz. po nawróceniu ś. Pawła, w poniedz. po przewodniéj niedzieli, po ś. Filipie i Jakóbie, w poniedz. po ś. Jakóbie ap., w poniedziałek po ś. Szymonie i Judzie. Targ tygodn. we wtorek.

**Ligotka** (przy Cieszynie): Targi na bydło: 1 na wiosnę w poniedz. po św. Jerzym, 2 w poniedz. przed św. Jadwigą.

**Skoczów:** we czwartek po niedzieli mięsopustnéj, po Wniebowstąpieniu Pańskiém, na Bartłomieja, na św. Marcina. Wielkie targi tygodn. w następne czwartki: przed Wielkanocą, po Bożém Ciele, po ś. Michale, przed Bożém narodzeniem. Targ na bydło przed każdym jarmarkiem i wielkim targiem tygodn.

**Strumień:** we wtorek po nowym roku, na św. Jerzego, w poniedz. po św. Jakóbie, na św. Michała. Na bydło przed każdym jarmarkiem. Targ tygodn. co piątek.

**Ustroń:** 12 marca, 26 czerwca, w poniedz. po ś. Michale. Targ tygodn. co poniedziałek.

**Zabrzeg:** targ tygodniowy co wtorek.

**Opawa:** 1 lutego, 1 maja, 1 sierpnia, 1 listopada. Na bydło: za tydzień po ś. Trójcy, za tydzień po ś. Janie Chrzc., za tydzień po ś. Jakóbie, za tydz. po narodzeniu PM. Na wełnę: 6 maja, 29 września, każdy po 8 dni.

**Albrechcice:** w poniedz. po 3 królach, na św. Filipa i Jakóba, w poniedz. po wniebowz. NMP., na Szym. i Judę. Na bydło we środę przed kwietnią niedzielą, we środę przed ś. Jakóbem, we środę ces. kierm.

**Boneszów:** w pierwszy poniedziałek postny, we wtorek po św. Piotrze i Pawle, w poniedz. przed ś. Idzim, we wtorek po ś. Katarzynie.

**Bielowiec**: w drugi czwartek postu, na św. Idzi, na św. Mikołaja. Na bydło: we czwartek przed wniebowst. Pańskiém, we czwartek po Bożém Ciele.

**Bruntal**: zawsze w poniedz. po nowym roku, po niedzieli suchéj, po św. Jerzym, po św. Małgorzacie, po św. Marcinie.

**Cukmantel**: na św. Mateusza apostoła, w poniedz. po 6 niedzieli po Wielkiéjnocy, na św. Mateusza, na św. Andrzeja.

**Frywald**: po nowym roku, na ś. Józefa, na ś. Jana Chrzc., na ś. Michał.

**Hrabina**: na zaślubienie PM., 19 marca, 16 maja, 2 lipca, w poniedz. po narodz. PM., na Szymona i Judę.

**Hraćec**: w poniedz. przed Wielkanocą, w poniedz. po Bożém Ciele, na św. Jakóba, w poniedz. po św. Michale, na Młodzianki.

**Karniów**: po niedzieli głuchéj, po niedzieli 6 po Wielkiéjn., w poniedz. po nawiedz. PM., w poniedz. po narodz. PM., w poniedz. po ofiarow. PM. Na bydło: w poniedz. po kwietniéj niedzieli, w poniedz. po św. Małgorzacie, w poniedz. po św. Bartłomieju, w poniedz. po ś. Mikołaju.

**Klimkowice**: w poniedziałek przed ś. Walentym, po niedzieli środopostnéj, w poniedz. po ś. Trójcy, na ś. Wawrzyńca, na ś. Katarzynę. Na bydło: na św. Filipa i Jakóba, na św. Wacława.

**Odry**: w poniedz. przed ś. Trzech Króli, po niedz. przewodniéj, w poniedz. przed ś. Janem Chrzc., w poniedziałek po podniesieniu krzyża ś.

**Opawica**: w poniedz. po Bożém Ciele, w poniedz. po ś. Michale.

**Witków**: we czwartek po NMP. gromnicznéj, w poniedz. po Jubilate, a wtorek po św. Wicie, we wtorek po Rozesłańc., w poniedz. po wniebowz PM., w poniedz. po ś. Gawle, w poniedz. po św. Łucyi, oraz i na bydło.

**Werbno**: w poniedz. przed gromn., na ś. Jana Chrzc., na ś. Michała.

**Wisła**: 24 kwietnia, 8 lipca, we środę po 15 październiku.

Uwaga. Uprasza się urzędy gminne o doniesienie o omyłkach.

---

## 2. Jarmarki na Morawie.

**Brno** (Brünn): w 3 poniedz. lutego, w 2 poniedz. maja, w 1 poniedz. września, w 1 poniedz. grudnia. Targ na wełnę: w 1 wtorek lipca. Targ na konie w poniedz. po każdym jarmarku. Targ na bydło co poniedz. i wtorek. Targi tygodniowe co środa i piątek.

**Brno stare** (Alt-Brünn): w 1 poniedz. marca, w 1 poniedz. lipca, w 4 poniedz. paźdz.

**Jičín nový** (Neutitschein): we środę przed nawróc. św. Pawła, we środę przed św. Jerzym, we środę po ś. Wawrzyńcu, we środę przed Szym. a Jud. Targ na wełnę: w 1 poniedz. czerwca, w 2 poniedz. paźdz.

**Jihlawa** (Iglau): we czwartek po ś. Macieju, we czwartek przed ś. Janem Chrzc., we czwartek po ś. Ludomili, we czwartek po ś. Katarzynie. Targ na wełnę: we czwartek przed ś. Petronelą, we czwartek przed ś. Urszulą.

**Mistek**: w ostatni czwartek karnawału, we czwartek po Bożém Ciele, we czwartek po wniebowz. PM., w 2 czwartek przed Wszystk. Świętymi, we czwartek przed ś. Tomaszem. Targ tygodn. co czwartek.

**Ołomuniec** (Olmütz): w poniedz. po 3 królach, w poniedz. po ś. Jerzym, w 3 poniedz. po ś. Janie Chrzc., w 3 poniedz. październ. Targ na wełnę: we środę po św. Duchu, w dzień przed Wszystk. Świętymi. Targi tygodn. co środa i sobota.

**Ostrawa Morawska** (Mähr.-Ostrau): w 2 czwartek po Nowym roku, w 2 czwartek lutego, we czwartek po św. Duchu, w 1 czwartek sierpnia, w 4 czwartek września, w 2 czwartek listopada. Na konie i bydło w dniu przed każdym jarmarkiem. Targ na len i wełnę: w sobotę po ś. Filipie i Jakóbie, w sobotę po ś. Michale. Wielki targi tygodn. we czwartek przed zielonym czwartkiem, we czwartek przed Narodz. Pańsk. Targ na czarny dobytek każdy wtorek i każdą środę.

---

## 3. Jarmarki w górnym Szląsku.

**S. Anna** (Annaberg): 14 czerwca, 20 września.

**Łubczyce** (Leobschütz): 21 marca, 23 maja, 19 września, 5 grudnia. Na wełnę: 4 czerwca, 5 listopada.

**Raciborz** (Ratibor): 18 stycznia, 15 marca, 21 czerwca, 23 sierpnia, 8 listopada. Na wełnę: 24 maja, 26 października.

---

## 4. W Galicyi.

**Alwernia** (obwód Krakowski): 15 stycznia, 26 lutego, 19 marca, 24 kwietnia, 16 maja, 24 czerwca, 18 lipca, 16 sierpnia, 24 września, 21 października, 23 listopada, 23 grudnia.

**Bochnia** (obwód Bocheński): 2 stycznia, w poniedz. po niedz. mięsopustnéj, w poniedz. po 3 niedz. postu na konie i bydło, (trwa aż do piątku tego tygodnia), potém jarmark we czwartek każdego tygodnia aż do piątku po wnieb. Pańskiém, w piątek po Bożém Ciele, 24 i 30 czerwca, 22 lipca, 10 sierpnia, w poniedz. po podwyższeniu ś. krzyża, w poniedz. po Różańcu, 11 i 25 listopada. Jeżeli który z tych jarmarków przypadnie na sobotę, niedzielę lub dzień świąteczny, odkłada się na następujący poniedz. lub inny dzień powszedni. Co czwartek targ tygodniowy.

**Brzesko** (obwód Bocheński): ma 17 jarmarków, co trzeci wtorek, a w każdy inny wtorek targ tygodn.

**Bolszowce** (obwód Brzeżański): 2 stycznia, 28 stycznia, 8 marca, czyli na tak zwane ruskie Obrytenie, 17 lipca, 13 września, czyli na ruskie święto św. Szymona, 21 listopada czyli 1 dnia po ruskim św. Michale.

**Brzeżany** (obwód Brzeżański): ma 5 wielkich a 6 małych jarmarków, 13 stycznia, w środopoście rusk. kal., we wtorek po ziel. świętach rusk. kal., 6 sierpnia; mniejsze: 3 lutego, 21 maja, 20 września, 13 paźdz., 26 listopada, 18 grudnia. Co poniedz. i piątek targ tygodn.

**Bojana** (obwód Czerniowicki): na bydło podług star. kal. ośm dni po wniebowst. Pańskiém, 9 lipca, to jest dwa dni przed śś. Piotrem i Pawłem ruskim, 25 lipca, 14 września, t. j. na podwyższenie ś. krzyża rusk. obrz., 21 października, 21 listopada t. j. w św. Wowed-Bohorodycy.

**Biecz** (obwód Jasielski): 12 jarmarków i to zawsze w poniedz. po następnych dniach: po 1 styczniu, po 25 styczniu, po 24 lutym, po 24 marcu, po 20 kwietniu, po 25 maju, po 29 czerwcu, po 10 sierpniu, po 15 wrześniu, po 17 październiku, po 11 listopadzie, po 6 grudniu. Jeżeli przypadnie święto, odbywa się w dzień następny. Co poniedz. targ tygodn.

**Babice** (obwód Przemyślski): 6 stycznia, 4 maja, 24 sierpnia, 29 wrześn.

**Bobowa** (obwód Sandecki): 25 stycznia, 4 lutego, 15 i 16 maja, 5 lipca, 10 i 25 sierpnia, 9 września, w niedz. po św. Franciszku wyzn., w poniedz. po Wszystkich świętych, 11 listopada, 14 grudnia. Co wtorek targ tygodn.

**Baligród** (obwód Sanocki): 14 września. Co poniedz. targ tygodn.

**Biercza** (obwód Sanocki): w dzień po nowym roku, na śś. Piotra i Pawła, na ś. Franciszka Seraf. 4 paźdz. Co środa targ tygodn.

**Brzozów** (obwód Sanocki): na 3 króli, na ś. Dorotę, w pierwszy poniedz. po środop., na ś. Wojciecha, na zielone świątki, na śś. Piotra i Pawła, na ś. Maryę Magdalenę, 22 sierpnia, na ś. Hijacynta, na podnies. św. krzyża, na ś. Franc. Seraf., na wszystkich śś., na ś. Barbary. Co poniedziałek targ tygodniowy

**Bukowsko** (obwód Sanocki): na tuczone woły w dzień ś. Macieja 24 lutego, trwa przez dni cztery. Co czwartek targ tygodn.

**Bochorodczany** (obwód Stanisławowski): 14 stycznia, 14 marca, 7 lipca, 8 listopada. Każdy wtorek i piątek targ tygodn.

**Buczacz** (obwód Stanisławowski): 18 stycznia, 14 lutego, 29 marca, 6 kwietnia, 5 maja, 2 i 24 czerwca, 13 sierpnia, 7 września, 13 października, 11 listopada, 12 grudnia. Co czwartek targ tygodn.

**Bolechów** (obwód Stryjski): na 3 króli obrz. rusk., na św. Jerzego rusk obrz., na św Piotra i podnies. św. krzyża rusk. obrz.

**Bukaczowce** (obwód Stryjski): na nowy rok, w ostatni czwartek zapust rusk. obrz., we wtorek wielkanocny rusk. obrz., w zielone świątki obrz rusk., na św. Jana obrz. rusk. 8 sierpnia, w dzień św. Pantaleona 10 września, na Ussiknow. rusk. obrz. 1 listopada, 3 grudnia na Wowed. Bohorod. rusk. obrz.

**Biała** (obwód Wadowicki): pierwszego dnia przed każdym z następn. jarmarków Bielskich jarmarki na konie, a mianowicie w trzeci poniedz. po 3 królach, w drugi poniedz. po ś. Janie Nepomuc., w pierwszy poniedz. po ś. Jakóbie, w pierwszy poniedz. po śś. Szymonie i Judzie. Co sobota targ tygodniowy.

**Białykamień** (obwód Złoczowski): 2 stycznia, 2 lutego, 1 marca, 2 kwietnia, 15 maja, 29 lipca, 14 września, 25 listopada, 6 grudnia. Co środę i piątek targ tygodn.

**Busk** (obwód Złoczowski): 7 stycznia, w poniedz. po niedz. zapustnéj (Serkeska), w dzień następujący po ś. Teodorze, we środę w środku świąt wielkiéjnocy, w dzień po zwiastowaniu P. Maryi, 9 maja, 13 i 30 czerwca, 6 sierpnia, 1 i 18 paźdz., 7 grudnia. Co piątek targ tygodn.

**Bełz** (obwód Żółkiewski): 9 i 31 stycznia, 17 marca, 28 kwietnia, 24 czerwca, 2 lipca, 1 sierpnia, 13 paźdz., 26 listopada, 12 grudnia. Co piątek targ.

**Czchów** (obwód Bocheński): jarmarki co trzeci wtorek.

**Chodorów** (obwód Brzeżański): 14 stycznia, 5 maja, 12 lipca, 12 paźdz, co czwartek targ.

**Czortków** (obwód Czortkowski): 2 lutego, 21 marca, 12 maja, 11 lipca, 27 sierpnia, 7 listopada, 10 grudnia. Co piątek targ tygodn.

**Czerniowce** (obwód Czerniowicki): 12 lipca przez 14 dni, 12 listopada przez 8 dni. Co poniedz. targ tygodn.

**Chocimierz** (obwód Kołomyjski): w ostatni dzień postu, 29 marca, 20 maja, 5 lipca, 19 listopada, 17 i 31 grudnia.

**Chrzanów** (obwód Krakowski): w drugi poniedz. po 3 królach, w poniedz. po oczyszczeniu PM., w dzień ś. Grzegorza, w dzień śś. Filipa i Jakóba, w dzień ś. Jana Chrzc., na ś. Jakóba apostoła, na ś. Małgorzatę, na wniebowstąpienie PM., na ś. Franciszka Borg., na śś. Szymona i Judę, na ś. Marka ap., na ś. Mikołaja bisk. Nadto targi co czwartek.

**Czernichów** (obwód Krakowski): w niedzielę 1 po 3 królach, po M. P. Gromn., po ś. Józefie, po ś. Wojciechu, po wniebowstąpieniu P., po ś. Trójcy, po ś. Jakóbie, po ś. Bartłomieju, po ś. Mateuszu, po śś. Szymonie i Judzie, po ś. Katarzynie, po ś. Tomaszu.

**Chyrów** (obwód Samborski): każdego wtorku targ tygodn.

**Ciężkowice** (obwód Sandecki): w poniedz. po nowym roku, w pierwszy poniedz. postu, w poniedz. po niedz. Laetare, w poniedz. po ś. Wojciechu, w poniedz. po wniebowstąpieniu, w poniedz. po oktawie Bożego Ciała, w poniedz. po ś. Małgorzacie, w poniedz. po ś. Jakóbie, w poniedz. po św. Jacku, w dzień podwyższenia ś. krzyża, w poniedz. po ś. Franciszku Seraf., w poniedz. po ś. Jędrzeju. Co poniedz. targ tygodn.

**Dobczyce** (obwód Bocheński): w roku 12 jarmarków, to jest każdego miesiąca we czwartek; targi zaś tygodn. w poniedziałki.

**Droginia** (obwód Bocheński): na ś. Walentego, na ś. Wojciecha, na NPM. Szkaplerzną.

**Dunajów** (obwód Brzeżański): 2 stycznia, w poniedz. po przew. niedzieli obrz. rusk., 24 czerwca, 18 paźdz.

**Dukla** (obwód Jasielski): 7 stycznia, 25 lutego, 19 marca, na wniebowst P., na Boże Ciało, 24 czerwca, 22 lipca, 20 sierpnia, 25 listopada, 21 grudnia.

**Drohobycz** (obwód Samborski): 19 marca, we wtorek po rusk. ziel. św., na Bartłomieja rusk. obrz., 6 września na ofiar. PM. rusk. obrz., 3 grudnia, każdy trwa przez 4 dni. Co poniedz. targ tygodn.

**Dunajec czarny** (obwód Sandecki): na płótno w ostatni poniedz. zapustny, w poniedz. po wielkim tygodniu, w poniedz. po ś. Trójcy, po wniebowz. PM., 2 listopada, w poniedz. ostatniéj niedzieli adwentowéj.

**Dobromil** (obwód Sanocki): 29 stycznia star. stylu, w dzień po wniebowstąpieniu rusk. obrz., 11 czerwca, 26 lipca przez 4 tygodnie, 29 września przez dwa tygodnie. Co piątek targ tygodn.

**Dubiecko** (obwód Sanocki): 25 stycznia, 30 czerwca. Co wtorek targ.

**Dynów** (obwód Sanocki): 17 stycznia, 8 maja, 29 września, na św. Jędrzeja 20 listopada.

**Delatyn** (obwód Stanisławowski): na wełnę i owce na wniebow. obrz rusk. i na św. Michała. Co poniedz. i piątek targ tygodn.

**Dolina** (obwód Stryjski): 14 lutego, 12 maja, 6 lipca, 1 sierpnia, 13 października, 21 grudnia. Co poniedz. i czwartek targ tygodn.

**Dąbrowa** (obwód Tarnowski): na zielone św., na Rozesł., 15 lipca; na św. Michała na konie.

**Dembica** (obwód Tarnowski): 2 stycznia, 2 lutego, 25 kwietnia, 14 maja, na Boże Ciało, 24 czerwca, na św. Małgorzatę, 15 paźdz., 4 grudnia.

**Felsztyn** (obwód Samborski): 13 kwietn., 20 wrześn., każdy trwa 8 dni.

**Fredropol** (obwód Przemyślski): 2 stycznia, 25 marca, 12 sierpnia, 19 listopada. Co piątek targ tygodn.

**Gorlice** (obwód Jasielski): ma 12 jarmarków, we wtorki po następujących świetach: po 3 królach, po św. Macieju, po niedz. palmowéj, po śś. Filipie i Jakóbie, po wniebowstąp., po ś. Janie Chrz., po ś. Maryi Magdalenie, po wniebowz. PM., po narodz. PM., po ś. Franciszku Ser., po św. Marcinie, po trzeciéj niedz. adwentu.

**Gwoźdźiec** (obwód Kołomyjski): 28 stycznia, na św. Piotra w okowach, 21 marca, na św. 40 męczenników, 26 lipca na św. Annę, 4 paźdz. na św. Franciszka Seraf. Co piątek targ tygodn.

**Gródek** (obwód Lwowski): w poniedz. po Bożém Ciele, 14 września Co wtorek targ tygodn.

**Głogów** (obwód Rzeszowski): na przędzę 2 i 21 stycznia, 24 lutego, 12 marca, 8 maja, 24 czerwca, 22 lipca, 6 sierpnia, 9 i 30 września, 15 października, 16 listopada, 6 grudnia. Co wtorek i piątek targ tygodn.

**Grodzisko** (obwód Rzeszowski): 6 stycznia, 2 lutego, 3 i 19 marca, 3 i 20 maja, 29 czerwca, 14 września, 1 listopada, 4 grudnia.

**Grybów** (obwód Sandecki): 21 stycznia, 4 marca, w poniedz. środopostny, we wtorek po wielkiéjnocy, 3 maja, we wtorek po zielonych świętach, w poniedziałek po ś. Janie Chrzc., 26 lipca, w poniedz. po św. Wawrzyńcu, w poniedz. po narodzeniu PM., 21 września, 17 grudnia. Co piątek targ tyg.

**Grzymałów** (obwód Tarnopolski): 17 marca, 4 maja, 9 i 17 września; co czwartek targ.

**Gliniany** (obwód Złoczowski): po nowym roku rusk., 13 lut., we środę święta wielkiéjnocy obrz. rusk., 8 maja, w dzień po wielk. obrz. rusk., 23 maja, 20 lipca, 6 i 20 listopada, 18 grudnia. Co piątek targ tygodn.

**Gołogóry** (obwód Złoczowski): 26 lutego, 21 marca, 7 maja, 15 czerwca, 26 lipca, 20 września, 15 paźdz.

**Husiatyn** (obwód Czortkowski): 24 czerwca, 21 września.

**Horodenka** (obwód Kołomyjski): w dzień nowego roku rusk. kalend., 14 lutego. (Stritenie hospodine), w drugi poniedz. postu rusk. obrz., na zwiastowanie PM. rusk. obrz., na ś. Wojciecha rusk. obrz., 5 maja na wniebowstąpienie rusk. obrz., na śś. Piotra i Pawła rusk. obrz., na wniebowzięcie rusk. obrz., 28 sierpnia, 7 listopada, na św. Dymitra rusk. obrz.

**Hołosko** (obwód Lwowski): blisko Lwowa, 25 lipca.

**Husaków** (obwód Przemyślski): 8 maja, 27 sierpnia, 18 grudnia. Co czwartek targ tygodn.

**Haczów** (obwód Sanocki): 29 września, 12 listopada. Co sobota targ tyg.

**Halicz** (obwód Stanisławowski): 7 stycznia, 5 kwietnia, 5 lipca, 12 października. Co piątek targ tygodn.

**Jagielnica** (obwód Czortkowski): 8 i 28 stycznia, 14 i 20 lutego, we środę środopustną obrz. rusk., 20 marca, w pierwszy poniedz. po wielkiéjnocy, 6 kwietnia, 6 lipca, 30 paźdz., 13 listopada, 18 grudnia. Co piątek targ tygodn.

**Jasło** (obwód Jasielski): 6 stycznia, 3 lutego, 23 kwietnia, 20 lipca, 15 sierpnia, 21 września, 1 listopada. Co piątek targ tygodn.

**Jedlicze** (obwód Jasielski): 25 lutego; 20 kwietnia; 18 czerwca; 9 sierpnia i 29 września.

**Jeleń** (obwód Krakowski): w dzień obrzezania Chrystusa P.; w poniedz. po niedz. starozapustnéj; na św. Józefa; na znalez. krzyża św.; 3 czerwca; w poniedz. po ś. Janie Chrzc.; na ś. Jakóba; w drugi poniedz. po św. Wawrzyńcu; na podwyższenie św. krzyża; w poniedz. po ś. Franciszku Seraf.; w poniedz. po wszystkich śś. i w poniedz. po ś. Mikołaju.

**Janów** (obwód Lwowski): 2 stycznia; 17 maja; 8 listopada. Każdy przez 8 dni.

**Jaryczów** (obwód Lwowski): 21 stycznia; 31 maja; 19 września; 11 grudnia. Co piątek targ tygodn.

**Jarosław** (obwód Przemyślski): 12 stycznia; 10 marca; 13 czerwca; 2 września; 30 listopada; każdy trwa po 8 dni. Co poniedziałek i piątek targ tygodn.

**Jaworów** (obwód Przemyślski): 6 maja; 1 sierpnia; 20 paźdz.; 12 grudnia. Co poniedz. i piątek targ tygodn.

**Jawornik** (obwód Rzeszowski): 2 stycznia; 24 lutego; na tydzień przed wielkanocą; 1 maja; 24 czerwca; 21 września; 28 października; 30 listopada. Co czwartek targ.

**Jaćmirz** (obwód Sanocki): 12 marca; na św. Grzegorza; 8 maja; na św. Jana Chrzc.; każdy trwa 3 dni na woły tuczne.

**Jasienica** (obwód Sanocki): 2 lipca; 5 sierpnia; 9 grudnia. Co czwartek targ.

**Jaśliska** (obwód Sanocki): na 3 króli rusk.; na NMP. Gromn.; w wstępną środę; w niedz. kwietnią; na znal. św. krzyża; na św. Antoniego z Padwy; na św. Małgorzatę; na wniebowz. NMP.; na św. Teklę; na św. Łukasza; na św. Katarzynę; na św. Lucyę; na konie i bydło węgierskie; każdy trwa 3 dni. Co wtorek targ tygodn.

**Jezupol** (obwód Stanisławowski): 27 lipca na ś. Kiryaka obrz. rusk.

**Jędrychów** lub **Andrychów** (obwód Wadowicki): na drelichy, pestry, obrusy 19 marca; 24 czerwca; 24 sierpnia; 21 grudnia; gdyby który na niedzielę lub święto przypadł, w następujący wtorek się odprawi; targ co wtorek i piątek.

**Jordanów** (obwód Wadowicki): 24 lutego; 24 kwietnia; w 7 poniedz. po zielon. świątkach; 29 grudnia; każdy trwa 3 dni.

**Jezierna** (obwód Złoczowski): 12 styczn.; 1 dzień po rusk. wielk.; 20 lipca; 20 paźdz.

**Konkolniki** (obwód Brzeżański): 24 marca; 22 lipca; na św Maryę Magdalenę; na wniebowzięcie PM. rusk. obrz.; 8 września star. st.; 1 i 26 paźdz. star. st.; 9 grudnia star. st.

**Kozłów** (obwód Brzeżański): 9 stycznia na ś. Marcina; w czwartą środę wielkiego postu podług obrz. łacińsk.; w pierwszy poniedz. po zielonych świętach; w poniedz. po Bożém Ciele obrz. greck.; na ś. Wawrzyńca 10 sierpnia; na podniesienie św. krzyża polsk.; na św. Łukę rusk. Co czwartek targi tygodn.

**Korolówka** (obwód Czortkowski): 29 stycznia; w środę środopostną obrz. rusk.; na wniebowstąpienie obrz. rusk. 24 czerwca; 8 sierpnia; 30 września; 10 listopada; 18 grudnia. Co piątek targ tygodn.

**Krzywcze** (obwód Czortkowski): na bydło 18 stycznia; 30 kwietnia; 10 lipca; 8 grudnia. Targ co poniedz.

**Kimpolung** (obwód Czerniowicki): 20 stycznia; 21 maja i 8 listop. star. kal.; w każdy poniedz. targ tygodn.

**Korczyna** (obwód Jasielski): 3 kwietn.; 15 czerwca; 30 sierpnia; 1 grudn.

**Krosno** (obwód Jasielski): 1 stycznia; w sobotę po wielkanocy; w poniedziałek po św. Trójcy; 31 lipca; 28 paźdz.

**Kołomyja** (obwód Kołomyjski): 6 lutego; 24 kwietnia przez 8 dni; 15 czerwca; 3 sierpnia; 13 września; 30 paźdz.; 18 grudn.

**Kossów** (obwód Kołomyjski): we czwartek pierwszego tygodnia w wielkim poście przez 2 dni; na wniebowstąpienie; 15 sierpnia; 1 paźdz. przez 2 dni. Co poniedz. i piątek targ tygodn.

**Kułaczkowce** (obwód Kołomyjski): 9 stycznia; 15 lutego; 6 marca; 19 kwietnia; 24 maja; 6 czerwca; 18 i 27 sierpnia; 6 września; 12, 21 i 29 grudnia.

**Kuty** (obwód Kołomyjski): 30 stycznia; 22 maja; 26 września; 13 listopada; każdy trwa przez 4 dni. Co poniedz. i piątek targ tygodn.

**Kraków** (obwód Krak.): ma dwa jarmarki na bydło, wełnę itd.: 16 maja, 16 września; oba przez 14 dni. Co wtorek i piątek targ tygodn.

**Krakowiec** (obwód Przemyślski): 2 stycznia; w poniedz. po następnej niedzieli po wielkiéjnocy obrz. rusk.; 25 lipca; 27 września; 18 października; 25 listopada. Co poniedz. targ tygodn.

**Krukienice** (obwód Przemyślski): 18 stycznia; 5 marca; 23 kwietnia; 11 lipca; 13 września; 13 paźdz.

**Krzywcze** (obwód Przemyślski): 18 stycznia; 30 kwietnia; 10 lipca; 8 grudnia. Co środa targ tygodn.

**Kańczuga** (obwód Rzeszowski): 6 stycznia; 2 lutego; 25 kwietnia; 29 czerwca; 22 lipca; 15 sierpnia; 29 września; 4 listopada; 4 grudnia. Co wtorek i piątek targ tygodn.

**Komarno** (obwód Samborski): w poniedz. po św. Trójcy; w poniedz. po śś. Szymonie i Judzie. Co poniedz. targ tygodn.

**Krościenko** (obwód Sandecki): we wtorek po zielonych świątkach; 26 czerwca; 30 września; 1 listopada. Co poniedz. targ tygodn.

**Kałusz** (obwód Stryjski): 18 stycznia; 12 lutego; 13 marca; 20 kwietnia; 16 maja; 6 czerwca i 20 lipca po 8 dni; 27 sierpnia; 28 września; 27 paźdz.; 18 listopada; 10 grudnia przez 8 dni. Co poniedz. i piątek targ tygodn.

**Kalwarya** (obwód Wadowicki): 25 stycznia; 4 maja; 17 sierpnia; 19 listopada. Co środę targ tygodn.

**Kenty** (obwód Wadowicki): 13 stycznia; 12 maja; 15 września; 15 grudnia; co sobotę targ tygodn., a co poniedz. targ na bydło rzeźne.

**Kamionka strumiłowa** (obwód Złoczowski): 2 stycznia; 21 marca; 7 kwietnia; 24 czerwca; 11 lipca; 18 sierpnia; 15 paźdz.; 21 listopada. Co piątek targ tygodn.

**Liszki** (obwód Krakowski): ma jarmarków 12, to jest w pierwszy poniedziałek każdego miesiąca.

**Lwów** (obwód Lwowski): 4 maja przez 4 tygodnie; od 10 do 24 czerwca; na św. Agnieszkę; 12 paźdz. przez 2 tygodnie.

**Leżajsk** (obwód Rzeszowski): 21 stycznia; 23 kwietnia; na wniebowstąpienie; 24 sierpnia; 4 października; 6 grudnia. Co wtorek i piątek targ tyg.

**Limanowa** (obwód Sandecki): w pierwszy dzień po nowym roku; podobnie po P. Maryi Gromn.; po niedz. Laetare; po niedz. Conductus; w dzień śś. Filipa i Jakóba apost.; w św. Wawrzyńca; w dzień powszechny po św. Michale; podobnie po wszystkich świętych; w ś. Marcina bisk.; w ś. Tomasza

**Lubomierz** czyli **Lubowa** (obwód Sandecki): w dzień po nowym roku, na św. Grzegorza, w dzień po narodz. P. Maryi.

**Lisko** (obwód Sanocki): 3 lutego, w poniedziałek po niedz. Rogate. Co czwartek targ tygodn.

**Lutowiska** (obwód Sanocki): podług grecko-katolickiego kalendarza, 2 stycznia rusk., w Stryt. hos. dnia 2 lutego na środę rusk., to jest w środę 4 tygodn. postu, na ś. Jura rusk. obrz. 13 kwietnia, w poniedz. ziel. świąt. obrz. rusk., na śś. Piotra i Pawła rusk. obrz. 29 czerwca, na Preobr. Hosp. dnia 6 sierpnia. Rozd. Preś. Bohor 8 września, na ś. Łuk. Ewan. rusk., 18 paźdz., na św. Mikołaja rusk. obrz. dnia 6 grudnia. Co czwartek targ tygodniowy.

**Lisiatycze** (obwód Stryjski): na woły tuczne, konie i inne towary na ruskie 3 króle, 18 stycznia, na św. Jana chrzc. Co środa targ tygodn.

**Lanckorona** (obwód Wadowicki): w poniedz. po 3 królach, 21 stycznia, 4 marca, 7 maja, we wtorek po zielon. świątkach, w poniedz. po św. Trójcy, na św. Wojciecha, 24 czerwca, 25 lipca.

**Lubaczów** (obwód Żółkiewski): 24 marca, 21 maja, 29 czerwca, 8 sierpnia, 20 września, 18 grudnia Co piątek targ.

**Łańcut** (obwód Rzeszowski): 7 stycznia, 3 lutego, 15 marca, 16 maja, 13 czerwca, 10 i 26 lipca, 16 sierpnia, 6 października, 11 i 30 listopada Co piątek targ tygodniowy.

**Łącko** (obwód Sandecki): co trzeci tydzień w poniedz. targ się odbywa, jeżeli na ten dzień nie przypada święto.

**Łukawice** (obwód Sandecki): w dzień po najśw. MP. Gromn., w dzień po podwyższ. ś. krzyża, po znalezieniu ś. krzyża, po św. Jędrzeju, po św. Michale, w drugi dzień po niedz. misericordia.

**Łysiec** (obwód Stanisławowski): 11 lutego, 24 czerwca, 26 listopada i 6 targów tygodniowych 1 stycznia, 5 marca, 5 maja, 11 lipca, 18 sierpnia, 26 października.

**Malechów** (obwód Lwowski): 25 czerwca w dzień po ś. Janie, 20 wrześn.

**Mościska** (obwód Przemyślski): 25 lutego, 24 czerwca, 10 sierpnia, 1 listopada, główny jarmark na konie; tydzień przedtém bywa znaczny handel na płótna i futra.

**Muszyna** (obwód Sandecki): w dzień po nowym roku, w dzień po NMP. Gromnicznéj, po wniebowstąpieniu, na ś. Maryę Magdalenę, na ś. Michała, po niedzieli przed ofiarowaniem NMP. Co poniedz. targ tygodn.

**Mrzygłód** (obwód Sanocki): w dzień po 3 królach obrz. rusk., w dzień po Bożém Ciele obrz. łacińsk., w dzień po wniebowstąpieniu.

**Manasterzyska** (obwód Stanisławowski): 8 stycznia, 14 lutego, w pierwszy i piąty poniedz. po wielkiéjnocy, we wtorek po zielonych świętach, 20 czerwca, 30 lipca, 18 sierpnia, 13 września, 26 paźdz., 7 listopada, 18 grudnia. Co piątek targ tygodn.

**Mekotyńce** (obwód Stanisławowski): jarmarki na bydło: 14 kwietnia, 1 i 14 maja, w dzień po Bożém Ciele.

**Mikołajów** (obwód Stryjski): na nowy rok rusk., 6 sierpnia, 8 września rusk. kalend.; w każdy wtorek targ tygodn.

**Mielec** (obwód Tarnowski): pięć jarmarków, a to zawsze we czwartek po następujących dniach: po 2 lutym, po św. Trójcy, po 15 sierpniu, po 21 wrześniu, po 11 listopadzie. Co czwartek targ tygodn.

**Mikulince** (obwód Tarnopolski): podług rusk. kalend. 2 stycznia, 3 i 25 lutego, 25 marca, po błahowiszczeniu pierwszego dnia po wielkiéjnocy i 21 maja na Konstantego rusk. obrz., 24 czerwca, 20 lipca, na św. Eliasza rusk. obrz., 24 sierpnia w dzień po narodz. NMP. obrz. rusk., 9 września rusk. kalend., 18 paźdz., na św. Łukasza obrz. rusk., w dzień po św. Mikołaju rusk. obrz. Co wtorek i piątek targ tygodn.

**Milówka** (obwód Wadowicki): w pierwszy poniedz. każdego miesiąca.

**Myślenice** (obwód Wadowicki): 7 stycznia, we wtorek po ziel. świętach, 25 lipca, każdy trwa przez dwa dni, najwięcéj na płótna. Co wtorek i piątek targ tygodniowy.

**Maków** (obwód Złoczowski): 29 stycznia, 2 maja, 7 sierpnia, 19 listop. Co czwartek targ tygodniowy.

**Mosty wielkie** (obwód Żółkiewski): 5 kwietnia.

**Niegowice** (obwód Bocheński): w dzień po trzech Królach, na ś. Wojciecha, na ś. Annę, na ś. Urszulę; w każdą sobotę targ tygodn.

**Niepołomice** (obwód Bocheński): 7 stycznia, w poniedz. po niedzieli zapustnéj, w poniedz. po niedzieli palmowéj, 8 maja, w poniedz. po św. Trójcy, 24 czerwca, 26 lipca, 23 września, 4 listopada.

**Narajów** (obwód Brzeżański): na płótna, konie, owce i bydło 18 stycznia, na rusk. 3 króle, 29 marca w ś. Aleksy rusk. obrz., 6 kwietnia na zwiastow. NPM. rusk. obrz., 14 maja, 9 lipca na św. Jana rusk. obrz., 6 sierpnia na św. Annę rusk. obrz., 26 września na podwyższenie ś. krzyża rusk. obrz., 3 grudnia na ofiarow. NPM. rusk. obrz. Co piątek targ.

**Niebylec** (obwód Jasielski): w dzień po św. Walentym dnia 15 lutego 1 września na ś. Egydiusza, 7 listopada na Młodzianków, 26 grudnia. Co poniedziałek targ tygodn.

**Nowa góra** (obwód Krakowski): w poniedziałki po ś. Agnieszce, po znal. św. krzyża, po św. Michale, po św. Tomaszu apost.

**Nawarya** (obwód Lwowski): 18 stycznia, 14 lutego, 11 lipca, 28 sierpnia, 26 września, 10 listopada. Co środa targ.

**Niżankowice** (obwód Przemyślski): na św. Trójcę rusk. obrz., na św. Mikołaja rusk. obrz. Co środa targ.

**Nowy Sącz** (obwód Sandecki): 2 i 21 stycznia, w pierwszy poniedz. w poście, w poniedz. po niedzieli palmowéj, 8 kwietnia, 3 i 7 maja,

30 czerwca, w poniedz. po św. Małgorzacie, 7 sierpnia, 13 września, 12 listopada. Co piątek targ tygodniowy.

**Nowy Targ** (obwód Sandecki): w pierwszy poniedz. po 3 królach, 21 stycznia, 6 lutego, 19 marca, w poniedz. po św. Wojciechu, 16 maja, we wtorek po ziel. święt., na ś. Jana Kantego, 25 lipca, 29 sierpnia, w poniedz. po Narodz. NMP., 29 września, w poniedziałek po św. Katarzynie, 13 grudn. Co sobota targ tygodniowy.

**Nowe Miasto** (obwód Sanocki): 23 kwietnia na ś. Wojciecha, 19 lutego na św. Elżbietę. Co czwartek targ tygodn.

**Nowotaniec** (obwód Sanocki): na śś. Filipa i Jakóba, w pierwszy poniedziałek po św. Trójcy, na NPM. Anielską, na św. Marcina bisk. i co poniedziałek targ tygodniowy.

**Nadwórna** (obwód Stanisławowski): na owce i bydło w 1. 3 króli rusk. obrz., na św. Piotra rusk. obrz., na ś. Pokrowy, na ś. Jerzego. Co poniedz. i piątek targ tygodn.

**Niżniów** (obwód Stanisławowski): 1 i 19 stycznia, 11 lutego, 29 marca, 4 maja, 24 czerwca, 6 lipca, 13 sierpnia, 20 września, 7 paźdz., 20 listopada, 3 grudnia.

**Narol** (obwód Żółkiewski): 19 marca, 24 sierpnia i co czwartek targ tygodniowy.

**Niemirów** (obwód Żółkiewski): 18 stycznia, 12 listopada. Co czwartek targ tygodn.

**Obertyn** (obwód Kołomyjski): 18 stycznia, 6 kwietnia, 7 maja, 24 czerwca, 18 lipca, 1 sierpnia, 18 sierpnia, 20 września, 13 października, 9 listopada, 12 i 23 grudnia.

**Otynie** (obwód Stanisławowski): podł. kalend. rusk. na św. Jakóba, na św. Piotra, na św. Prokopa, na św. Michała, na św. Łukasza.

**Cświęcim** (obwód Wadowicki): w poniedz. po 3 królach, po NMP. Gromn., po niedz. suchéj, po niedz. kwietn., po ś. Wojciechu, po wniebowst., po śś. Piotrze i Pawle, po św. Piotrze w okow., po św. Idzim, po św. Franciszku Seraf., przed św. Marcinem, po niepok. pocz. NMP., każdy trwa 8 dni.

**Olesko** (obwód Złoczowski): 14 lutego, 14 kwietnia, 21 maja, 6 lipca, 20 września, 7 i 20 listopada, 18 grudnia.

**Podgórze** (obwód Bocheński): 12 stycznia, 15 lutego, 19 marca, 30 kwietn., 22 maja, 8 czerwca, 8 lipca, 2 sierpnia, 15 września, 15 paźdz., 9 listopada, 7 grudnia. Co wtorek i piątek targi tygodn.

**Podhajce** (obwód Brzeżański): w św. 3 Króli, w niedz. Syropust., na ruskie środopoście, w poniedz. po pierwszéj niedz. po wielkiéjnocy rusk., na wniebowstąpienie, na śś. Piotra i Pawła, na wniebowzięcie PM., na podniesienie św. krzyża, na św. Łukasza, na św. Michała, na św. Mikołaja.

**Przemyślany** (obwód Brzeżański): 1 stycznia, 14 lutego, 28 marca, 29 maja, 11 czerwca, 11 listopada. Co piątek targ.

**Peczeniżyn** (obwód Kołomyjski): podług rusk. kalend. co wtorek i piątek targ, w dzień po rusk. ś. Dymytry, na rusk. 3 króle, na rusk. zwiastow. PM., w dzień po ruskiém wniebowzięciu PM., na rusk. podnies. św. krzyża.

**Pistyn** (obwód Kolomyjski): podług rusk. kalend. na św. Michała, przed nowym rokiem 31 grudnia, w dzień przed 3 królami, na ś. Aleksy, 29 marca, w pierwszy czwartek po wielkanocy, w poniedz. po zielonych świętach, pierwszego i drugiego dnia po śś. Piotrze i Pawle, 6 lipca, na św. Jędrzeja i Onufrya, na św. Pantaleona dnia 8 sierpnia, na ścięcie ś. Jana 10 września, w dzień ś. Łuki 30 paźdz., na św. Jędrzeja 12 grudnia.

**Paczołtowice** (obwód Krakowski): co drugi wtorek ma jarmarki wolne.

**Pruchnik** (obwód Przemyślski): 21 stycznia, 3 lutego, 19 marca, 23 kwietn., w dzień po Bożém Ciele, 3 czerwca, 25 lipca, 9 sierpnia, 17 paźdz., 12 listopada, 6 grudnia. Co poniedz. i czwartek targ tygodn.

**Przemyśl** (obwód Przemyślski): 26 czerwca, 9 grudnia, każdy trwa 14 dni. Co poniedz. i piątek targ tygodn.

**Przeworsk** (obwód Rzeszowski): 2 stycznia, 19 marca, 1 maja, 25 lipca, 3 paźdz., 19 listopada. Co poniedz., środa i piątek targ tygodn.

**Piwniczna** (obwód Sandecki): 2 stycznia, w poniedz. po niedz. Laetare, we wtorek po zielonych świętach, 25 lipca, 24 sierpnia. Co środę targ tygodn

**Podhorce** (obwód Stryjski): 13 lutego, 17 maja, 19 września, 2 grudnia, w każdy czwartek targ tygodn.

**Pilzno** (obwód Tarnowski): 7 stycznia w poniedz. po pierwszéj niedz. po NMP. Gromn., 19 marca, we wtorek po wielkiéjnocy, 8 i 24 kwietnia, 7 maja, w poniedz. po zielonych świętach, 23 czerwca targ na płótna, 22 lipca, 15 sierpnia, 29 i 30 września, na św. Jana Kantego, 11 listopada, w poniedz. po 3 niedz. adwentu.

**Pobiedr** (obwód Wadowicki): we środę po NMP. gromnicznéj, we środę po św. Wojciechu, w 1 środę po św. Janie Chrzc., we środę po wniebowz. NMP., we środę po św. Michale, we środę po św. Łucyi.

**Pomorzany** (obwód Złoczowski): 18 marca, 12 czerwca, 26 września, 17 grudnia, podług rusk. kalendarza. Co piątek targ tygodn.

**Rohatyn** (obwód Brzeżański): 9 stycznia, 3 lutego, 26 lipca i 1 paźdz. Co piątek targ tygodn.

**Radowce** (obwód Czerniowicki): 1 maja, 20 listopada, w każdy piątek targ tygodniowy.

**Radymno** (obwód Przemyślski): 25 maja, 20 sierpn., 20 wrześn., 20 grudn.

**Rytarowice** (obwód Przemyślski): 13 stycznia, 13 lipca.

**Radomyśl** (obwód Rzeszowski): 6 stycznia, 4 marca, 23 kwietnia, w dzień wniebowst., 24 czerwca, 10 sierpnia, 20 września, 26 listopada.

**Rudniki** (obwód Rzeszowski): 1 stycznia, 9 marca, 5 kwietnia, 21 wrześn., 21 październ., 30 listopada, każdy trwa 8 dni i zaczyna się, gdyby na te dni święto przypadło, w dzień następny.

**Rzeszów** (obwód Rzeszowski): 19 marca, 23 kwietnia, na św. Trójcę, 2 lipca, 21 września, 2 listopada, 21 grudnia. Co wtorek i piątek targ tygodn.

**Rudki** (obwód Samborski): 26 marca, 30 czerwca, 27 wrześn., 6 grudnia. Co wtorek targ tygodniowy.

**Rogi** (obwód Sanocki): 26 lipca, 24 sierpnia, 6 grudnia; w każdą środę targ tygodniowy.

**Rybotycze** (obwód Sanocki): na podn. św. krzyża, 14 wrześn., 20 grudn. Co czwartek targ.

**Rymanów** (obwód Sanocki): 25 lipca na św. Jakóba, w dniu narodzenia NMP., na św. Wawrzyńca 10 sierpnia, 9 września, na św. Mikołaja 6 grudn. po dni 6 na woły, nierogaciznę, wełnę i płótna. Co poniedz. targ tygodn.

**Rozdół** (obwód Stryjski): 19 marca, 16 lipca, 29 września; w każdy poniedziałek targ tygodn.

**Różniatów** (obwód Stryjski): w dzień po nowym roku, we środę środop., we wtorek po zielonych świątkach, w dzień po śś. Piotrze i Pawle, 1 sierpn., w dzień po narodzeniu NMP., na św. Michała.

**Ruda** (obwód Stryjski): w nowy rok i na św. Jana ruskiego obrządku; w każdy poniedz. targ tygodn.

**Ropczyce** (obwód Tarnowski): 7 stycznia, 12 lutego, 26 kwietnia, 26 maja, 22 lipca, 18 sierpnia, 28 paźdz., 9 grudnia. Co poniedz. targ tygodn.

**Radziechów** (obwód Złoczowski): 19 stycznia, 11 lutego, 12 marca, 10 kwietnia, 21 maja, 24 czerwca, 1 i 18 sierpnia, 26 września, 30 październ., 13 listopada, 18 grudnia.

**Szczuczawa** (obwód Bocheński): od dwóch do dwóch tygodni jarmarki się odbywają.

**Sadagóra** (obwód Czerniowicki): na bydło 6 lutego, we czwartek przed niedzielą palmową, 1 sierpnia, 6 września, 13 października, 5 i 28 listopada, 14 grudnia, podług nowego kalendarza. Co czwartek targ.

**Seret** (obwód Czerniowicki): 2 lutego na święto oczyszczenia NMP. obrz. rusk., w dzień wniebowzięcia NPM. rusk. obrz., w św. Mikołaja rusk. obrz., trwa 3 dni.

**Suczawa** (obwód Czerniowicki): w pierwszy dzień po nowym roku rusk. obrz., we wtorek po zielonych świętach rusk. obrz., na ś. Prokopa rusk. obrz., 8 lipca nowego kal., na Samuelity rusk. obrz., 20 sierpnia, 15 września, w dzień podn. św. krzyża rusk. obrz., na ś. Dymitry rusk. obrz., 26 paźdz. Co czwartek targ tygodn.

**Śniatyn** (obwód Kolomyjski): podług rusk. kal. we środę środopostu, we wtorek po zielon. świętach, w dzień po św. Janie Chrzc., na św. Eliasza, w dzień po narodzeniu PM. Co poniedz., środę i piątek targ tygodn.

**Szczerzec** (obwód Lwowski): 2 stycznia, w dzień po zielonych świętach, 20 lipca, 30 września. Co czwartek targ.

**Sądowa Wisznia** (obwód Przemyślski): 2 stycznia, na zielone święta rusk. obrz., 26 lipca, 27 września. Co środę targ tygodn.

**Sieniawa** (obwód Przemyślski): 22 stycznia, 4 kwietnia, 24 czerwca i 2 listopada.

**Sędziszów** (obwód Rzeszowski): 19 marca, 23 kwietnia na konie, 3 czerwca, 2 lipca, 21 września, 2 listopada, 21 grudnia. Co piątek targ tygodn.

**Sambor** (obwód Samborski): 3 lutego, 1 maja, 21 września, 30 listopada każdy trwa 14 dni. Co czwartek targ tygodn.

**Stare miasto** (obwód Samborski): 12 marca, 24 czerwca, 12 dni na płótna, 10 września, 12 paźdz. Co wtorek targ tygodn.

**Stary Sącz** (obwód Sandecki): w r. 1870 zaszła zmiana, że jarmarki zacząwszy od 1 środy po trzech Królach, co dwa tygodnie we środę przypadają.

**Sanok** (obwód Sanocki): we wtorek przed zielonemi świętami, w poniedz. przed Bożém narodzeniem; w każdy piątek targ tygodn.

**Sołotwina** (obwód Stanisławowski): na bydło 2 lutego, w ósmy dzień po wielkan., w dzień wnieb., na św. Eliasza, na ś. Mikołaja, na św. Michała, podług rusk. kalend. Co piątek targ tygodn.

**Stanisławów** (obwód Stanisławowski): 1 maja na bydło, 2 sierpnia nowego kal., 29 sierpnia star. kal., 6 i 17 paźdz. star. kalend.

**Smorze** (obwód Stryjski): znaczne jarmarki na bydło; w niedzielę Syropustną ruskiego obrz., 31 maja, 24 czerwca, na św. Iliję rusk. obrz., 15 lipca, 14 września, na św. Ussiki rusk. obrz., 18 października, 9 listopada, 9 grudnia.

**Sokołów** (obwód Stryjski): 7 kwietnia, 13 czerwca, 19 sierpn., 4 grudn.

**Stryj** (obwód Stryjski): w pierwszym tygodniu wielk. postu, w dzień tak zwany Feodorowicze i 8 marca na św. Mikołaja przez 3 dni, 15 sierpnia przez 14 dni, 6 grudnia przez 8 dni. Co poniedz. i czwartek targ tygodn.

**Szczucin** (obwód Tarnowski): na św. Dorotę, na św. Floryana, na św. Trójcę, na św. Maryę Magdalenę, na św. Teresę, na św. Barbarę. Co piątek targ tygodn.

**Skałat** (obwód Tarnopolski): podług rusk. kalend. na 3 króli, na św. 3 bisk., 1 kwietnia na św. Aleksego, na św. Wojciecha 23 kwietnia, w dzień po zielonych świątkach, 12 lipca, 21 września, 8 października. Co wtorek targ tygodniowy.

**Skawina** (obwód Wadowicki): 2 stycznia, 9 kwietnia, 16 sierpnia, 4 października.

**Sassów** (obwód Złoczowski): 14 lutego, 24 czerwca, 30 września, 6 grudnia, w poniedz. i piątek targ.

**Sokal** (obwód Żółkiewski): 18 stycznia, 23 kwietnia, 12 lipca, 4 paźdz., 20 listopada rusk. obrz. Co piątek targ tygodn.

**Sucha** (obwód Wadowicki): w poniedz. po nowym roku, na św. Wojciecha, w poniedziałek po wielkanocy, 15 sierpnia, 8 września, 15 paźdz., 11 listopada, 8 grudnia.

**Trzciana** (obwód Bocheński): w dzień po niedz. kwietniéj, w dzień św. Małgorzaty, w dzień po św. Michale, w dzień po św. Marcinie.

**Trzebinia** (obwód Krakowski): w poniedziałek po 3 królach, w poniedziałek po P. Maryi Gromnicznéj, w poniedziałek po niedzieli białéj, na św. Wojciecha, na św. Stanisława, na śś. Piotra i Pawła, w poniedziałek po św. Jakóbie, na św. Bartłomieja, na św. Mateusza, w poniedziałek po śś. Szymonie i Judzie, w poniedziałek po św. Katarzynie, na św. Tomasza. Targi co niedziela.

**Tarnobrzeg** (obwód Rzeszowski): ma 12 targów, w ostatni powszedni dzień każdego miesiąca.

**Tyczyn** (obwód Rzeszowski): 2 i 25 stycznia, 26 marca, 11 czerwca, 21 września, 25 listopada. Co poniedz. targ tygodn.

**Turka** (obwód Samborski): 11 stycznia, 13 lutego, 7 kwietnia, 9 lipca, 25 sierpnia, 18 września, 11 października, 22 listopada, trwa dwa dni. Co środę targ.

**Tylicz** (obwód Sandecki): w dzień po 3 królach, w dzień po niedzieli Conductus Paschae, we wtorek po zielonych świętach po śś. Piotrze i Pawle, po wszystkich świętych, w dzień św. Andrzeja.

**Tymbark** (obwód Sandecki): w poniedziałek po Bożém Ciele, na św. Jakóba apostoła, w dzień po NMP., 17 października. Co środa targ tygodniowy.

**Tyrawa Wołoska** (obwód Sanocki): 16 lipca na bydło, a co środa targ tygodniowy.

**Tłumacz** (obwód Stanisławowski): 23 maja, 6 grudnia i co środę targ tygodniowy.

**Tyśmienica** (obwód Stanisławowski): jarmarki na bydło i konie: 24 marca, 30 kwietnia, 3 lipca, 27 września. Co piątek targ tygodn.

**Tarnów** (obwód Tarnowski): 3 lutego, w poniedziałek po niedzieli Cantate, 12 lipca, 14 września, każdy przez 14 dni. Co wtorek i piątek targ tygodniowy.

**Tarnopol** (obwód Tarnopolski): 2 stycznia, 14 lutego, w środopoście obrz. rusk., w poniedziałek po wielkiéjnocy obrz. ruskiego, 24 czerwca, 26 lipca, główny jarmark na konie, 18 sierpnia, 26 września, 20 listopada. Co środa targ.

**Trembowla** (obwód Tarnopolski): na popielec, 8 i 19 lipca, 15 grudnia. Co piątek targ.

**Tartaków** (obwód Żółkiewski): 14 lutego, 31 maja, 6 sierpnia, 30 paźdz. i 18 grudnia.

**Uście solne** (obwód Bocheński): 23 kwietnia, 24 czerwca, 24 sierpnia, 1 października.

**Ułaszkowce** (obwód Czortkowski): na bydło 6 kwietnia, na św. Jana rusk. dnia 24 czerwca rusk. kal.

**Uścieczko** (obwód Czortkowski): 14 lutego, 11 marca, 31 marca, 6 kwietnia, 29 kwietnia, 12 czerwca, 10 lipca, 13 października, 13 listopada, 13 grudnia.

**Ulanów** (obwód Rzeszowski): 2 stycznia, 1 marca, 2 i 23 kwietnia, w dzień po wniebowst. Pańsk., w poniedz. po św. Trójcy, 20 lipca, 24 sierpn., 24 września, 11 listopada, 4 grudnia.

**Ustrzyki** (obwód Sanocki): 2 stycznia, 4 kwietnia, 8 lipca na ś. Elżbietę, w paźdz. na ś. Franc. wyzn. i co czwartek targ tygodn.

**Uniów** (obwód Złoczowski): 15 sierpnia na wniebow. NMP. obrz. rusk., trwa do 7 dni.

**Wieliczka** (obwód Bocheński): w poniedziałek przed św. Agnieszką, w poniedziałek przed NPM. Gromniczną, w ostatni poniedziałek w miesiącu lutym, w poniedziałek przed św. Kazimierzem, w poniedziałek po niedzieli palmowéj, w poniedz. przed znalezieniem św. krzyża, we wtorek po zielonych świętach, w poniedziałek przed św. Janem, w poniedziałek przed ś. Jakóbem, w poniedz. przed św. Hiacyntem, w poniedz. przed św. Michałem, w poniedz. przed śś. Szymonem i Judą, w poniedz. przed św. Klemensem, w poniedz. przed św. Tomaszem; co czwartek targ tygodn.

**Wiśnicz** (obwód Bocheński): 6 stycznia, 2 listopada, 21 grudnia.

**Wojnicz** (obwód Bocheński): w poniedz. od trzech do trzech tygodni, targi tygodn. co drugi poniedz.

**Wyżnica** (obwód Czerniowicki): 25 stycznia, 30 kwietnia, 5 lipca, 13 sierpnia, 20 września, 6 listopada. Co poniedz. targ tygodn.

**Wielkie Oczy** (obwód Przemyślski): 6 lutego, 29 kwietnia, 10 czerwca, 15 lipca, 10 września, 17 listopada.

**Wojniłów** (obwód Stryjski): 13 stycznia, 5 maja, na bydło trwa 3 dni, 11 lipca, 18 sierpnia.

**Wadowice** (obwód Wadowicki): w pierwszy poniedz. każdego miesiąca. Co czwartek targ tygodniowy.

**Wilamowice** (obwód Wadowicki): w poniedziałek: po nawróceniu św. Pawła, po św. Janie Nepom., po św. Bartłomieju, po św. Jadwidze, po trzy dni trwają. Co środa targ tygodniowy.

**Witków** (obwód Złoczowski): 14 lutego, 2 marca, 11 lipca, 1 paźdz., 1 grudnia. Co czwartek targ tygodniowy.

**Zakluczyn** (obwód Bocheński): co trzeci poniedziałek jarmark, co czwartek targ tygodniowy.

**Zmigród** (obwód Jasielski): 2 lutego, w środku postu, na ś. Wojciecha, na św. Jana Chrzc., na św. Jakóba, 17 paźdz., na św. Łucyę.

**Zabłotów** (obwód Kołomyjski): 6 i 30 stycznia, 25 marca, 23 kwietnia, 29 czerwca, 16 września, 1 i 26 października i 30 listopada.

**Zbyszyce** (obwód Sandecki): na śś. Fabiana i Sebastyana, na św. Walentego, na św. Józefa, na św. Marka, na św. Jana Nepom., na św. Jana Chrzc., na św. Annę, na św. Bartłomieja, na św. Macieja, na św. Łukasza, na św. Katarzynę, na św. Tomasza.

**Zarszyn** (obwód Sanocki): na św. Jerzego, w dzień po wniebowst. 17 lipca, 12 paźdz. Co środa targ tygodn.

**Zator** (obwód Wadowicki): 26 stycznia, 28 kwietnia, 30 czerwca, 2 września.

**Założce** (obwód Złoczowski): 14 stycznia, 12 lutego, 14 marca, 12 kwietnia, 12 maja, 24 czerwca, 14 lipca, 13 sierpnia, 19 września, 13 października, 8 listopada, 4 i 21 grudnia. Co poniedziałek i piątek targ tygodniowy.

**Zborów** (obwód Złoczowski): 25 marca, 5 lipca, 17 sierpnia, 25 wrześn.

**Złoczów** (obwód Złoczowski): 19 stycznia, 1 lutego, 1 kwietnia, 7 maja, 9 czerwca, 2 sierpnia, 10 września, 7 listopada. Co poniedziałek, środę i piątek targ.

**Żołynia** (obwód Rzeszowski): w niedzielę kwietnią, w dzień ś. Trójcy, 10 sierpnia, 21 grudnia, trwają po dwa dni, na len, przędzę i płótno zaś 25 stycznia, 24 lutego, 11 maja, 22 lipca, 8 i 21 września, 28 października, 25 listopada, trwają tylko po dniu. Co piątek targ tygodniowy.

**Żurawno** (obwód Stryjski): 15 marca na konie przez 8 dni, 7 kwietnia na św. Matronę obrz. rusk. 6 dni, 11 czerwca, na wszystkich śś. obrz. rusk. 6 dni, 15 października 8 dni, 6 listopada 4 tygodnie.

**Żurów** (obwód Stryjski): 14 lutego, 6 kwietnia, 8 maja, 12 lipca, 6 sierpnia, 20 listopada.

**Żydaczów** (obwód Stryjski): 6 stycznia, 29 sierpnia i 26 listopada. Co wtorek i piątek targ tygodniowy.

**Żywiec** (obwód Wadowicki): w poniedziałek po trzech królach, po wniebowst. Pańsk., po śś. Piotrze i Pawle, po św. Michale.

**Żółkiew** (obwód Żółkiewski): 19 stycznia, 8 maja, 30 czerwca, 13 sierpnia, 14 września, 5 października, 12 listopada. Co wtorek i piątek targ tygodniowy.

## B.

# Dodatek do jarmarków w Galicyi.

**Barysz** w powiecie Buczackim: Co poniedziałek targ tygodniowy.

**Biercza**, miasto powiatowe: 2 stycznia, 29 czerwca, 4 października Co środa targ tygodniowy.

**Bóbrka**, miasto powiatowe: Co czwartku targi lub jarmarki.

**Bo'szczów**, miasto powiatowe: 18 stycznia, 20 lutego, w pierwszy dzień rusk. pos u, 4 maja, 6 tygodni po św. Piotrze i Pawle według greckiego kalendarza, 20 lipca, 27 sierpnia, 20 listopada, 3 i 23 grudnia. Co wtorku targ tygodniowy.

**Brody**, miasto powiatowe: 18 stycznia, 5 maja, 30 października oraz : targ na wełnę od dnia 26 sierpnia przez 8 dni trwający.

**Brzostek** w powiecie Pilzneńskim: 2 stycznia, 3 lutego, 24 lutego, we wtorek środopostny, 3 maja w wilię Bożego Ciała, 2 i 26 lipca, 14 wrześn., w poniedziałek po Wszystkich świętych, 25 listopada, 21 grudnia. Co drugi wtorek targ.

**Budzanów** w powiecie Czortkowskim. Co czwartku targi tygodniowe.

**Bursztyn** w powiecie Rohatyńskim: 18 stycznia, 2 lutego, 21 marca, 23 kwietnia, 5 i 30 czerwca, 14 sierpnia, 26 września, 30 października, 12 i 18 grudnia. Co wtorku targ tygodniowy.

**Chołojów** w powiecie Stryjskim: 8 stycznia, 14 lutego, 10 marca, 7 kwietnia, 6 i 20 maja, 9 czerwca, 14 sierpnia, 13 września, 13 października, 7 i 20 listopada.

**Chorostków** w powiecie Husiatyńskim: Co poniedz. targ tygodniowy.

**Czudec** w powiecie Rzeszowskim: We wtorek po Zielonych świątkach, 24 czerwca, w poniedz. po św. Bartłomieju. Co czwartek targi.

**Dombowiec** w powiecie Jasielskim: 21 stycznia, 24 lutego, 19 marca, 5 kwietnia, 4 maja, we wtorek po Zielonych świątkach, 24 czerwca, 4 i 24 sierpnia, 14 września, 4 października, 11 i 25 listopada. Co poniedz. targ.

**Frysztak** w powiecie Jasielskim: Ma w każdy drugi czwartek walne jarmarki na bydło.

**Janów** w powiecie Gródeckim (podług starego kalendarza): 2 stycznia, 17 maja, 8 listopada. Każdy przez 8 dni.

**Jazłowiec** w powiecie Czortkowskim: Co wtorku targ tygodniowy.

**Jezierzany** w powiecie Borszczowskim: 1 stycznia, 11 lutego w niedz. Palmową, w niedzielę po Wielkiéjnocy, w 4. środę po Wielkiéjnocy, w poniedziałek po Zielonych świątkach. Wszystkie według ruskiego kalendarza, — dnia 13 lipca i 1 sierpnia, 13 i 26 września, 9 listopada.

**Knihinicze** w powiecie Rohatyńskim: 19 stycznia, 11 lutego, 21 marca, w poniedziałek po niedzieli Kwietnéj obrządku ruskiego, 21 maja, 6 lipca, 18 sierpnia, 20 września, 7 listopada, 18 grudnia. Co środa targ tygodniowy.

**Kołaczyce** w powiecie Jasielskim: 1 maja, 19 sierpnia. Ma oprócz tego jarmarki co drugi poniedziałek.

**Kopeczyńce** w powiecie Husiatyńskim: Co środy targ tygodniowy.

**Kozowa** w powiecie Brzeżańskim: 17 lutego, 17 marca, 17 kwietnia, 3 maja, 12 czerwca, 20 lipca, 20 sierpnia, 4 września, 27 października, 11 listopada, 30 grudnia. Co wtorek targ tygodniowy.

**Kulików** w powiecie Żółkiewskim (podług starego kalendarza): w dzień Nowego Roku, w dzień Strytenie, na Wniebowstąpienie Pańskie, w dzień N. Maryi Panny Zielnéj, w dzień Pokrowy, na św. Dymitra. Co wtorek targ tygodniowy.

**Latacz**, wieś w powiecie Zaleszczyckim: Co drugi czwartek walne jarmarki.

**Leszniów** w powiecie Brodzkim: Walne targi co niedzieli.

**Lipnica** w powiecie Bocheńskim: Co trzeci poniedziałek jarmark.

**Łabowa** w starostwie Nowo-Sądeckim, otrzymała w r. 1872 od wys. Namiest. koncessyę na 9 jarmarków, a mianowicie: po święcie M. P. Gromnicznéj, w zapusty ruskie, z trzecim tygodniem postu, po św. Janie, po Przemienieniu Pańskiém, po Pokrowach, po poświęceniu kościoła, po św. Łukaszu, po św. Niepok. poczęcia N. P. Maryi, według kalend. greckiego.

**Łopatyn** w powiecie Brodzkim: Co drugi wtorek targ.

**Maciejowa** w powiecie Sandeckim: 24 czerwca starego kalendarza.

**Magierów** w powiecie Rawskim: 8 stycznia, 14 lutego, 17 i 29 marca, 5 maja, 23 czerwca, 11 i 26 lipca, 20 września, 30 października, 26 listopada, 18 grudnia.

**Milatyn nowy** w powiecie Kamioneckim: Co czwartku targ tygodniowy

**Oleszyce** w powiecie Chrzanowskim: 24 lutego, 13 grudnia.

**Olpiny** w powiecie Jasielskim: 12 jarmarków, we czwartki po pełni każdego miesiąca na zboże i przędzę.

**Podkamień** w powiecie Brodzkim: 1 stycznia, 2 lutego, 10 marca, 6 kwietnia, 13 i 18 maja, 9 i 26 czerwca, 6 lipca, 18 sierpnia, 13 września, 8 października, 9 listopada, 18 grudnia.

**Podkamień** w powiecie Rohatyńskim: Co wtorku targ tygodniowy.

**Probużna** w powiecie Husiatyńskim: Co wtorku targ tygodniowy.

**Rawa ruska**, miasto powiatowe: 2 stycznia, w czwartą środę po Wielkiéjnocy, 7 lipca, 19 sierpnia, 27 września, 13 października, 21 listopada, 21 grudnia. Co poniedziałku targ tygodniowy.

**Rzepiennik biskupi** w powiecie Gorlickim: 19 marca, we wtorek po Wielkiéjnocy, we wtorek po Zielonych świątkach, 24 czerwca, 22 lipca, 11 września, 23 listopada. Co środa targ tygodniowy.

**Sokołów** w powiecie Kolbuszowskim: 29 czerwca. Targi tygodn.: 7 stycznia, 13 lutego, 4 i 26 marca, 23 kwietnia, 16 maja, 16 i 25 lipca, 24 sierpnia, 13 września, 18 października, 11 listopada, 18 grudnia.

**Sokołówka** w pow. Brodzkim: W każdą drugą środę walne jarmarki.

**Starasól** w powiecie Staromiejskim: 2 stycznia, w dzień po Bożém Ciele, 30 września. Co poniedz. i piątek targi tygodniowe.

**Storożyniec** na Bukowinie: 1—3 maja i 20—23 września. Każdego czwartku targ tygodniowy.

**Strussów** w powiecie Trembowelskim: Każdego czwartku targ tygodn.

**Strzyżów** w powiecie Rzeszowskim: W poniedziałek po trzech Królach, 8 lutego przez 3 dni, w poniedziałek zapustny, w poniedziałek środopostny, w poniedziałek po Wielkiéjnocy, 8 maja przez 3 dni, 25 lipca, 14 sierpnia przez 3 dni, 8 września, 21 października, 6 listopada przez 3 dni, 25 listop. Co wtorek targ.

**Uhnów** w powiecie Rawskim: 18 stycznia, 20 lutego, 12 czerwca, 13 lipca, 20 września, 30 października. Każdego piątku targ tygodn.

**Uniów** w powiecie Przemyślańskim: 15 sierpnia starego kalend., trwa przez 6 lub 7 dni.

**Uście biskupie** w powiecie Borszczowskim: Co drugi wtorek walne jarmarki.

**Uście ruskie** w powiecie Gorlickim: 18 stycznia, 5 maja, 6 czerwca 11 lipca, 20 listopada, 21 grudnia.

**Wargż** w powiecie Sokalskim: 15 lutego, 26 marca, 7 kwietnia, 8 maja, 24 czerwca, 24 sierpnia, 18 września, 8 listopada, 19 grudnia.

**Wola Mnichowa** w powiecie Liskim: 12 lutego, w piątek w pierwszym tygodniu wielk. postu rusk., 5 maja, 12 lipca, 21 września, 21 listopada. Co wtorek targ tygodniowy.

**Wybranówka** w powiecie Bobrzeckim: Co wtorku targ tygodniowy.

**Żabno** w powiecie Dąbrowskim, ma 6 jarmarków i targi sławne na nierogaciznę: 25 stycznia, w poniedz. po 2 niedzieli po Wielkiéjnocy, w poniedziałek po 1 niedzieli po św. Janie Chrzc., 16 sierpnia, 16 października, w poniedziałek po 3 niedzieli Adwentu. Targi co drugi poniedziałek.

**Zbaraż**, miasto powiatowe (podług star. kalend.): 7 lutego, 24 kwietnia, 5 lipca, 12 września. Co poniedz. i piątek targi tygodniowe.

**Zdynia** w powiecie Gorlickim, ma 9 jarmarków: 14 stycznia, 12 lutego, 21 marca, 7 maja, 7 lipca, 6 sierpnia, 27 września, 13 listopada, 13 grudnia na bydło, owce i nierogaciznę.

**Złotniki** w powiecie Trembowelskim: Na św. Aleksego, w dniu 8 maja na św. Demetra rusk. kalendarza.

---

## Zmiany jarmarków w Galicyi.

**Alwernia**, (obwód Krakowski), zamiast 24 września, 13 września

**Bobowa**, (obwód Sandecki), zamiast 5 lipca, 1 lipca.

**Busk**, (obwód Złoczowski), zamiast 6 sierpnia, 7 sierpnia.

**Czortków**, (obwód Czortkowski), zamiast 10 grudnia, 29 grudnia.

**Dynów**, (obwód Sanocki), zamiast 20 listopada, 30 listopada.

**Dolina**, (obwód Stryjski), zamiast 21 grudnia, 29 grudnia.

**Horodenka**, (obwód Kołomyjski), zamiast 14 lutego, 2 lutego.

**Nawarya**, (obwód Lwowski), zamiast 26 września, 27 września.

**Niżniów**, (obwód Stanisławowski), zamiast 3 grudnia, 5 grudnia

**Nowy Sącz**, (obwód Sandecki), zamiast po niedzieli palmowéj, do niedzieli palmowéj.

**Otynie**, (obwód Stanisławowski), po św. Prokopie i przed św. Michałem jarmark na św. Annę.

**Pistyn**, (obwód Kołomyjski), zamiast 29 marca, 17 marca.

**Radziechów**, (obwód Złoczowski), zamiast 1 i 18 sierpnia, 1 i 12 sierpn

**Rudniki**, (obwód Rzeszowski), zamiast 1 stycznia, 17 stycznia.

**Sądowa Wisznia**, (obwód Przemyślski), zamiast 2 stycznia, 1 stycznia.

**Sieniawa**, (obwód Przemyślski), zamiast 24 czerwca, 21 czerwca.

**Tarnów**, (obwód Tarnowski), przed 3 lutym jarmark w 1 poniedziałek stycznia przez 1 dzień.

**Turka**, (obwód Samborski): 11 stycznia, 7 kwietnia, 10 lipca, 25 sierpnia, 11 października; każdy trwa przez 2 dni. Co środa targ tygodniowy.

**Tyczyn**, (obwód Rzeszowski), zamiast 2 i 25 stycznia, 2 i 15 stycznia.

**Ulanów**, (obwód Rzeszowski), zamiast 24 września, 29 września.

**Uście solne**, (obwód Bocheński), zamiast 1 października, 24 paźdz.

**Zator**, (obwód Wadowicki), zamiast 2 września, 22 września.

---

☞ Uprasza się Sz. PP. przełożonych gmin, aby zmiany, jeżeli by zaszły w powyższym spisie jarmarków, oznajmili

**Cieszyn**, w Szląsku austr.

**Nakładcy niniejszego kalendarza.**

# Dni tygodnia.

*Wywód etymologiczny z badań językowych pana Hilarego.*

*Niedziela* jest dniem wesołości i jedności; każe się bowiem *nie dzielić,* ale być z sobą razem: i dla tego to w niedzielę tak pełno ludzi w miejscach uciechy.

*Poniedziałek* uczy miłości bliźniego, bo mówi chłopskim akcentem: *Ponie! działek!* — to jest: panie, dziel się z nami!

*Wtorek* jest dniem muzykalnym, dzień zgody i harmonii powszechnéj; pochodzi bowiem *od wtórowania,* a bez wtóru nie masz harmonii.

*Środa,* po staro-lechicku mówiono: *się-roda,* od słowa: *rodzić się.* Jestto dzień upominający kawalerów i panny.

*Piątek* pierwotnie zwał się *pijątek* i przypominał starym Polakom, którzy tęgo pijali, tę narodową cnotę. Inni zaś utrzymują przeciwnie, że nazwa *pijątku* poszła ztąd, iż jedząc w ten dzień dużo śledzi, *pić* się bardzo zachciewa.

*Sobota,* dzień żydowski, dzień *sobkowstwa,* egoizmu i chciwości: woła on na człowieka, *sobie! sobie!*

Ale najtrudniejszy do objaśnienia jest *Czwartek* i jeszcze nic pewnego o nim nie wiadomo. Domyślają się jednak, że w pierwotném słowiańskiem narzeczu, dzień ten zwał się *czort-wartek,* jakoby upominał ludzi, że wszystko na tym świecie jest *djabła warte!*

---

# Część literacka.

---

## Srebrne gody Najjaśniejszego Państwa.

Franciszek-Józef i Elżbieta obchodzili 24. kwietnia r. z. swe srebrne gody. Miłość połączyła przed dwudziestu pięciu laty ich serca i na skłonności téj wzajemnéj dwojga młodych oparty związek — pomieszał niejeden zamysł polityczny. Trudno opisać zdziwienie pełnéj woli i siły ducha arcyksiężnéj Zofji, matki dwudziesto trzyletniego podówczas cesarza, gdy tenże oświadczył jéj w Ischl stanowczo, iż wybrał sobie księżniczkę Elżbietę bawarską, swą kuzynkę, za narzeczoną.

16. sierpnia 1853 r. nastąpiły uroczyste zaręczyny; a 24. kwietnia 1854 r. książę arcybiskup Rauscher, przy rozwinięciu niezwykłéj okazałości, połączył w Wiedniu młodą parę. Tym sposobem po raz drugi już domy Habsburgów i Wittelsbachów ściśléj się połączyły. Czwarta żona cesarza Franciszka I., dobrotliwa Katarzyna i matka obecnie nam panującego monarchy, były księżniczkami bawarskiemi. Arcyksiężniczka Gizella, najstarsza córka Najj. Państwa, poszła za księcia Leopolda bawarskiego, a i ten związek także wywołany został nie politycznemi przyczynami, lecz obopólna miłość go uświęciła. Żyją jeszcze ludzie, którzy dzielili radość, jaka przenikała ludy Austryi na wieść o zaręczynach i małżeństwie Najj. Państwa. Poczucie dynastyczne, przywiązanie do domu panujących, który od lat sześciuset kieruje losami austryackich krajów, zapuściły w ludach państwa silne korzenie.

Cesarz Franciszek-Józef I.

Często, już sama osoba noszącego koronę, pomaga wiele do wzbudzenia przychylności dlań w narodzie. W tym względzie Franciszek-Józef, który w 18ym roku życia i w nader przykrych dla monarchji czasach, zaczął swe panowanie, zajął bardzo pomyślne stanowisko. Jego młodość, surowe obyczaje i ścisłe poczucie obowiązków, z któremi zaczął wypełniać swe zadanie, już od samego początku zyskały mu ogólną sympatję. W chwilach nawet najcięższych pierwszych lat jego panowania

Cesarzowa Elżbieta.

nietracono nadziei, że prędzéj czy późniéj, szlachetny monarcha przeprowadzi konieczne w państwie ulepszenia i rząd jego ogólny zwrot ku dobremu uczyni. Jego też zacne chęci uszczęśliwienia ludów Austryi, nigdy i cieniowi wątpliwości nie ulegały; i każdy był przeniknioną pewnością, że Monarcha tak hojnie obdarzony darami przyrody, doświadczony, pełen zacności i rycerskości w charakterze, w rzadkim stopniu posiadać będzie zdolność do kierowania państwową nawą. W czysto

przyjacielskich i tak szczerych zawsze stosunkach istniejących od lat sześciuset między rodziną Habsburgów a ludem, leży najlepszy dowód przywiązania, który poszedł prawie w przysłowie; przymioty zaś osobiste obojga Cesarstwa (mimo iż prąd czasu osłabia rozwój uczucia dynastycznego), z dnia na dzień ścieśniają jeszcze ten węzeł życzliwości, który dziś właśnie silniejszym jest niż kiedykolwiek.

Związek Franciszka-Józefa z Elżbietą, jak wszystkie związki na tym świecie, podlegał także chwilom smutku i radości. Zwykle trony władców różnemi wstrząśnieniami państwowemi, łatwiéj są i prędzéj niż naród dotknięte. Ciężkie próby, przez które Austrya pod obecnie panującymi przechodziła, a które osłabiły monarszą władzę i stanowisko całego państwa — rzuciły nieraz cień na domowe szczęście Cesarskiéj pary. Najpierw orężne uśmierzenie powstania węgierskiego w 1849 r., potém śmierć arcyksiężniczki Zofji (1856), najstarszéj córki Cesarstwa, następnie wojna włoska (1859), wyprawa do Danji (1863) i w tymże samym roku zaburzenia w Galicyi i znów druga kampanja z 1866 r. niemówiąc już o innych wewnętrznych niesnaskach w monarchji — stanowiły długi szereg niepowodzeń, które jednak żelaznego ducha i szlachetnego charakteru władcy nadwyrężyć niezdołały. Natomiast arcyksiężniczka Gizella ur. 12. lipca 1856 r., następca tronu arcyks. Rudolf ur. 21. sierpnia 1858 r. i arcyks. Marya Walerya ur. w Ofen 22. kwietnia 1868 r. są dumą i radością swych cesarskich rodziców. Arcyks. Gizella połączyła się w dniu 20. kwietnia 1873 r. związkiem małżeńskim z ks. Leopoldem Bawarskim, którego do dziś już dwoma córkami obdarzyła. W początku 1860 r. przebyła za to cesarzowa Elżbieta ciężką słabość i lata całe była w niebezpieczeństwie życia. Cierpienia szyjne i płuc, opierające się leczeniu najsławniejszych doktorów, usunięte zostały dopiero skutkiem łagodnego klimatu wysp: Korfu i Madeiry

oraz źródłami w Kissingen. Powrót do zdrowia ubóstwianéj monarchini, był powodem do uroczystego obchodu w całém państwie.

Cesarzowa Elżbieta, z taktem rzadkim u kobiet na takiém stanowisku, unika wywierania jakiegobądź politycznego wpływu; za to jednak tém gorliwiéj zajmuje się dobroczynnymi zakładami i jest prawdziwą matką biednych i nieszczęśliwych. Prócz tego jeszcze, niezadowalniając się wzniosłą rolą opiekuńczego anioła cierpiących, w latach epidemij nawiedzających państwo, nie wahała się nigdy, z narażeniem życia, wchodzić do szpitalów cholerycznych, gorączkowych itp. i umierającym jeszcze nieść słowa pociechy i nadziei. We Włoszech nawet, w chwilach gdy lud romański, pod wpływem myśli zjednoczenia, z najdzikszą zaciętością występował przeciw nadużyciom obcego mu rządu — Cesarska para posiadała wszystkie sympatje Lombardo-Wenecyanów, wiedziano bowiem, że gdyby wszystko od woli téj wysokiéj pary zależało, ludy pod berłem Franciszka-Józefa byłyby najszczęśliwsze i najwolniejsze z ludów ziemi. Do dziś każda ważniejsza ustawa, każde dobrodziejstwo ma źródło swe w koronie i nieulega wątpliwości, że i nadal rozwój przemysłu, handlu, sztuk, nauk, zgoła cały dobrobyt krajowy, będą miały w osobie Cesarza najżarliwszego opiekuna. Wszystkiém on sam się zajmuje, wzrok jego wgląda wszędzie i nieraz, w trudnych chwilach politycznego przesilenia, z rzadką zdolnością pojmowania rzeczy i oceniania jéj z właściwego stanowiska, sam on rozstrzygał najzawilsze kwestje i swym mężom stanu wskazywał odpowiednią drogę. To też gdy wysoka para w sile jeszcze wieku obchodzić miała 24. kwietnia 1879 r. dwudziestopięciolecie wspólnego życia — pod berłem Austryi zjednoczone ludy, powstały jak jeden mąż, aby z własnego popędu uczcić ubóstwianych władców.

Podczas gdy ościenni monarchowie, kryć się muszą po za opancerzonemi ścianami szczelnie zamkniętych

powozów, otaczać rojami żołnierzy i w cywilną odzież przebranych policyantów, oraz uciekać się do poniżających godność ludzką ustaw średniowiecznego terroryzmu — Franciszek-Józef i Elżbieta, z pogodném obliczem, dumni szczęściem swych ludów, na każdym kroku przyjmują hołdy i oznaki ogólnéj miłości.

Kończąc ten artykuł, śmiało powiedzieć możemy, że cesarsko-austrjacka para — jest jedyną z panujących dziś w Europie, która w dniach niedoli, najpewniéj i najśmieléj pod opiekę własnych swych ludów udać by się mogła. Rządy, jéj rządom podobne, zaszczyt przynoszą dynastyi Habsburgów i patrząc na wieńce laurowe zdobiące głowy szlachetnéj pary, każdy przyznać musi, iż nigdy one na godniejszych skroniach niespoczywały! *Feliks K.*

---

## Zajęcie Bośnji i Hercogowiny.

Od czasów już wdarcia się Turków do Europy, Bośnja i Hercogowina były zawsze teatrem niepokojów i zajść najkrwawszych. Raz pod panowaniem niewiernych, znów pod rządem Austryackim, bitna ludność tych małych kraików słowiańskich, niemogła nigdy stanąć na równi z innemi ludami pod względem cywilizacyi. Ciągłe wojny, które to dobrzy sąsiedzi, to znów mieszkańcy z niemi lub między sobą od wieków staczali, były główną zawadą z powodu któréj, ziemie te we wszystkich traktatach były pod względem narodowości pomijane.

Pokój zawarty z Turkami w Sistowéj 1791 r. przydzielił ostatecznie Turcji oba te nieszczęśliwe kraje. Choć jednak Bośnja i Hercogowina pozorną ciszę i spokój otrzymały — żelazne rządy muzułmańskie niebyły z tych, które jaki bądź naród uszczęśliwić mogą.

Mieszkańcy Bośnji i Hercogowiny.

Oligarchiczna władza tureckich paszów była długim, ciągłym szeregiem gwałtów i najniecniejszych bezprawi; stałem, systematycznem gwałceniem wszelkich praw boskich i ludzkich — jednym, nieprzerwanym łańcuchem najpotworniejszych zbrodni i najokrótniejszego postępowania. Srogie rosyjskie rządy w Polsce, są w porównaniu z tureckim gospodarstwem w zajętych dziś przez nasze wojska ziemiach — szczytem słodyczy i łaskawości. To też gdy w roku 1875 powstały serbskie rozruchy, a potém i pierwsza turecko-słowiańska wojna — i w owych kraikach za oręż pochwycono. Pokój ze St. Stefano, nic nie czyniący dla biednych uciśnionych, wywołał tam znów krwawe rozterki które, gdy grozić poczęły całości i spokojowi granic austryackich — mocarstwa zebrane w r. z. w Berlinie, udzieliły c. k. rządowi pozwolenie zbrojnego zajęcia w zupełnym rozstroju pozostających: Bośnji i Hercogowiny; tém bardziéj, że były one już od lat kilku wielkim ciężarem dla Austryi, która zmuszoną była utrzymywać kosztem publicznego skarbu do 300.000 rodzin Bośniackich, które się na nasze terytoryum schroniły przed anarchją panującą w ich kraju.

Z początku myślano że zajęcie tych ziem nastąpi prawie bez wystrzału, z małemi więc tylko siłami wtargnęli tam Austryacy przekraczając rzekę Brood 29. lipca 1878 r. Gdy jednak ludność tameczna, zeledwie miljon dusz wynosząca, postanowiła bronić się do upadłego, a powstańcy, korzystając z naturalnych przeszkód gruntowych, znajomości swego kraju i górzystych okolic — zbrojny i nader mężny stawili opór przybyszom — musiano pod broń z górą 100.000 powołać ludzi i dopiero po kilkumiesięcznych niesłychanych trudach, miljonach kosztów i ogromnych stratach ludzi, udało się c. k. wojskom zdobyć szturmem Serajewo (18. sierpnia 1878), w którym jednakże, już po zbombardowaniu cytadeli, najzaciętszy bój zawiązał się na ulicach. Żołnierze musieli zdobywać dom po domu i radzić so-

Serajewo, główne miasto Bośnji.

bie płomieniami, bowiem kobiety nawet i dzieci bro
się do upadłego. Garstka jednak walecznych powsta
ców, nic w obec tak ogromnéj armji i kilkudziesięc
bateryj dział wielkiego kalibru zrobić niemogła; p
źniejsze więc potyczki, były już tylko szeregiem r
paczliwych usiłowań, które tylko terroryzm i darem
rozlew krwi wywoływały.

Dziś, Bośnja i Hercogowina, mają otrzymać wszy
kie swe narodowe prawa i możliwie dobre, a do
potrzeb zastosowane administracyjne urządzenia.

Nieulega więc wątpliwości że spokój zupełny, a z
dawny dobrobyt znów tam zawitają i Bośniacy, pr
konawszy się że z chwilą ustania walki, ustały i w
skowe rządy w ich kraju — z pewnością żałować
będą, że choć tym sposobem wyzwolono ich z tureckie
jarzma.

Deputacya Bośniacko-Hercogowińska, w raz z
nemi z krajów koronnych, złożyła swój adres u st
Tronu w pamiętnym dniu srebrnych godów Cesarsk
pary i Monarcha, przyjąwszy je bardzo łaskawie,
uroczyściéj zapewnił że kraje te postawi na ró
z innemi, zostającemi pod jego panowaniem.

Skutkiem ostatecznego uspokojenia tych kraj
i faktycznego przyłączenia ich do dziedzin korony Ha
burgów — ludność monarchji austryackiéj zwiększ
się o miljon mieszkańców i wkrótce prawdopodob
znajdziemy w radzie państwa zastęp nowych braci s
wian, którym na drodze rozkwitu przemysłu, hand
rzemiosł, sztuk i nauk życzymy jak najprędszego
ścignięcia celu i zasyłamy serdeczne „szczęść Boż

*Feliks K.*

---

## Zatopienie Szegiedyna.

Ze smutkiem najpierw zanotować musimy, iż z
szczenie spowodowane wylewem Cisy w dniu 5. ma

1879 r. i w następnych — o ile jest wynikiem niebywałego dotąd orkanu o tyle także pochodzi i z winy władz krajowych, jako proste następstwo poszłéj w przysłowie węgierskiéj nieporadności.

Cisa, z dawien dawna, była znaną jako jedna z burzliwszych rzek przeżynających kraj słowiański przez Madziarów zamieszkiwany, z powodu zaś licznych zakrętów, które tworzy po wydobyciu się z gór aż do ujścia do Dunaju, zawsze w dniach wylewów wiosennych, groźniejszą była niż inne. Położenie Szegiedyna, w dolinie, prawie na równi ze średnio wysokim stanem wody, dawniéj już powinno było pobudzić mieszkańców i rząd węgierski do obmyślenia trochę trwalszych, głębszych i wyższych, a głównie z lepszego materjału budowanych zapór, niż te, które obecnie woda w tylu miejscach poprzerywała. Prawdą jest że gdyby do niezwykłego podniesienia się stanu wody, jeszcze straszna burza niebyła się przyłączyła — Szegiedyn i w roku zeszłym byłby przetrwał ciężkie dnie próby, a przynajmniéj tak zupełnéj nie uległ ruinie. Burza jednak, a głównie wicher gwałtowny, pędzący rozhukane fale, był łatwym do przewidzenia; jeżeli zaś trzy czwarte miasta z gliny tj. z niepalonéj cegły jest zlepione i skutkiem prostego oberwania chmury jużby mogło być zburzoném — to gdy się ma jeszcze taką rzekę jak Cisa o krok prawie i takie nędzne jak Szegiedyńskie tamy — niezostawia się życia i mienia kilkudziesięciu tysięcy ludzi na łasce Opatrzności.

Szegiedyn, jedno z bogatszych miast Madziarskich w początku jeszcze 1879 r. liczyło do 120.000 mieszkańców i było ogniskiem krajowego handlu i przemysłu. Dziś sterczące kupy gruzów, świadczą już tylko o jego istnieniu; a choć miljony pójdą na wsparcia — choć lepiéj budowane zastawy zabezpieczą je na przyszłość od podobnych kataklizmów — dziesiątki tysięcy mieszkańców niewrócą już do dawnego dobrobytu — nikt nie wskrzesi tysięcy ofiar, które się stały pastwą rozpasanych żywiołów.

**

Powódź w Szegiedynie. (Przerwanie tamy kolei żelaznéj.)

Już w ostatnich dniach lutego z. r. wysokość wody zaniepokoiła bardzo mieszkańców Szegiedyna; zwrócono się do Ministerjum komunikacyj w Peszcie ale .... na razie żadnéj nieotrzymano odpowiedzi. Drugiego marca woda doszła już do wysokości 25 stóp i mieszkańcy okolicznych wiosek schronili się do miasta. Miano jednak nadzieję że wylew ograniczy się do pól tylko, i że miasto zostanie ochronionem. Do 4. jednak marca woda wznosząc się jeszcze bardziéj, przerwała już tamy na linji Szolnok-Szongradzkiéj i zagroziła bliskiéj ich gminie Alpar, zupełnym zniszczeniem. W trakcie tego wysłano ze stolicy wojsko do pomocy ale .... wszelkie już usiłowania były daremne, bo zapóźne. Tamy kolei Alfeldzkiéj, stanowiące ostatnią nadzieję Szegiedyńców, podwyższyć postanowiono, lecz już 6. marca w nocy, straszna burza z silnym wichrem połączona, pchnęła wody Cisy na najbliższe żelaznéj drodze pola i zaczęła przerywać wspomniane Alfeldzkie zastawy. 7. rano zniesła woda tamy Szrenyhazkie co widząc mieszkańcy Szegiedyna, zaczęli już zupełnie tracić nadzieję ocalenia. 7. wieczorem zerwała fala Baktoczską zastawę na północ kolei żelaznéj, kierując się prosto ku miastu i zwiększając się ciągłym, ulewnym deszczem.

Mimo tego jednak, wojsko i część ludności, dniem i nocą pracowali, narażąc daremnie życie, miasto wcześniéj uprzątać wszystko z nieuniknienie już skazanego na zagładę grodu. Wierzono jeszcze, że ciągła praca ocali Alfeldzkie zapory. Zaprowadzono stan wojenny dla przeszkodzenia rozbójnictwu, które brak moralności w madziarskiéj rasie tak często wywołuje — siłą zmuszono wszystkich robotników do chwycenia się łopat i rydlów — jednakże już dnia 9. o godzinie 7 wieczorem, zaczęła Alfeldzka tama pękać skutkiem gwałtownego parcia takiéj masy wód. Zerwano nawet profile mostu Mateusza na Cisie, aby odwrócić szalejące fale — wszystko jednak było już daremne. A fakt

ciekawy i najlepiéj malujący t. z. gospodarstwo madziarskie, iż z Pesztu, żadna dotąd komisja ratunkowa nieprzybyła. Dnie 10. i 11. co raz nowe porywały ofiary — gminy Doroszma i Ilalas, zupełnie zalane, utraciły w falach pięć set domów. Aż nareszcie nadszedł straszny dzień ostatniéj katastrofy . . . . . dnia 12. w nocy, po części śpiących, nieszczęśliwych mieszkańców Szegiedyna, zbudziły krzyki wojska i uciekających ulicami robotników: „Fel, Fel! itt' a víz“ (wstawajcie! wstawajcie! woda już tu jest!)

Dalsze, straszne sceny zniszczenia, grozy i rozpaczy opisać niepodobna; najlepiéj przedstawi je następujący telegram posłany do Pesztu: „Szegiedyn, 12. marca. Fale, ze straszliwym grzmotem wpadają z dwóch stron do miasta; dwie trzecie jego części są już pod wodą; domy, z głuchym łoskotem, walą się w spienione otchłanie; przerażenie jest nieopisane — ludność potraciła zupełnie głowy. Dwie fabryki w płomieniach, prawdopodobnie zbrodniczą ręką podpalone, pomnażają okropność téj nocy — setki ludzi przechodzą prosto ze snu do wieczności — fale unoszą meble, naczynia gospodarskie, trupy mężczyzn, kobiet i dzieci. Synagoga z tłumem szukających w niéj schronienia znikła już w wodzie; to samo stało się i z domem ochrony. Cytadela, poczta, bióro telegraficzne i inne publiczne gmachy, do połowy już w wodzie, słowem Szegiedyn jest . . . . . zgubiony.“

Z 6.000 gmachów w Szegiedynie — 4.000 runęły w wodę, z których 2.700 mieszkalnych w wyższéj części miasta. Na przedmieściu św. Rocha, ani jednego niezostało domu zgoła, prócz strat nieobliczonych i zupełnego rozstroju wszelkich społecznych stosunków; w nieszczęśliwym grodzie do dziesięciu tysięcy ofiar w ludziach pochłonęły rozhukane fale.

Jedyny promień nadziei i pociechy zaświtał dla Szegiedyna z chwilą, gdy Cesarz Franciszek-Józef udał się na miejsce katastrofy, aby osobiście przekonać się o doniosłości strasznego wypadku i obmyśleć na razie

zaradcze środki. I za przykładem szlachetnéj Cesarskiéj pary, liczne datki się posypały — cały świat cywilizowany wziął udział żywy w niedoli biednych mieszkańców. Choć jednak jak mówimy, zrobiono potém co tylko zrobić można było — wina okropności któreśmy tu w krótkości opisali — będzie wiecznie ciężyć na tych, co pierwéj o zabezpieczeniu należytém Szegiedyna przed wściekłością wód, niepomyśleli. *Feliks K.*

---

## Śmieszny koniec pogrzebu.

W Rydzowie umarł staruszek, który już od 20 lat chował w komorze dwie trumny, dla siebie i dla żonki swojéj. Ponieważ się śmierć ociągała, więc gospodyni, staruszka, używała próżne trumny na chowanie pieczek i różnych woreczków z krupami i korzeniami. Gdy mąż umarł, wypróżniła wdowa jedną trumnę, do któréj zmarłego włożono, a do drugiéj schowała wszystkie zapasy swoje.

Gdy orszak pogrzebowy stanął przed domem, poszło czterech pacholików, aby zmarłego wynieść na mary. Dźwigają pierwszą i drugą trumnę, aż nareszcie cięższą obrali i wynieśli. Odprawił się cały pogrzeb jak najuroczyściéj, z godzinkami i kazaniem, zapłakali krewni przy grobie i rzuciwszy ostatnią garstkę ziemi, powrócili do domu, rozmawiając o poczciwości zmarłego staruszka.

Ku wieczorowi, gdy się pokrewieństwo z wdową żegnało, poszła staruszka do komórki, aby wnuczki obdarzyć ulubionemi pieczkami; lecz któż opisze jéj zmartwienie, gdy w trumnie zamiast pieczek znalazła — swego zmarłego męża.

Powstał płacz i nowe narzekanie, a kopidół ze śmiechem wykopał trumnę z pieczkami i przygotował grób na pogrzeb, który się dnia następującego powtórnie i uroczyście odprawił. *W. S.*

---

# Fraszki.

Bibl. Jag.

## Godzien pożałowania.

— Ach, mój przyjacielu! od czasu mego ożenienia, zazdroszczę tylko Adamowi!

— Dla czegóż koniecznie Adamowi? Przecież go wygnano z raju dla tego, że z miłości dla swéj żony zjadł połowę sławnego jabłka.

— To prawda! ale szczęśliwiec ten nie miał w domu .... szwagrowéj!...

## Szczera odpowiedź.

Sędzia: Jak się pani nazywa?
Oskarżona: Józefa Burłak.
Sędzia: Panna jeszcze?
Oskarżona: Panna, Wny p. Sędzio!
Sędzia: A ile panna ma dzieci?
Oskarżona: Dwoje, Wny p. Sędzio!

## Niecierpliwość.

— Kiedy mi też przyniesiesz moje nowe buty?
— Jak pan poprzednią parę zapłaci.
— Tak długo czekać nie mogę przecie!

## Za stary.

*N.* W Cieszynie będzie w tych dniach wystawa młodych bydląt. Ty, jako dobry gospodarz, powinienbyś wziąć w niéj udział!

*B.* Na téj wystawie nie będę wcale przedstawiany, przyjmują tam bowiem bydlęta tylko do lat trzech najwyżéj.

---

## Z domowego życia.

Żona. Czego się tak ciągle kręcisz dziś przy oknie? zwykle i pół roku nieprzystąpisz do niego.

Mąż. Chcę tylko dawać baczenie aby Rózia szyby niestłukła...

Służąca. No, jak pan tego niechce, to niech mnie pan ręką nie łechce...

## Dwóch elegantów.

Pierwszy. Ach, jakie śliczne masz ubranie i... zupełnie nowe. Powiedz, co też cię ono kosztuje?

Drugi. Jakże chcesz u licha bym wiedział? Mój krawiec.... niezaskarżył mnie jeszcze.

---

## W sprawie o kradzież.

Sędzia (do obwinionego). Ponieważ uniewinniony jesteś z zarzutu kradzieży spodni, możesz iść do domu.

Obwiniony — nierusza się z miejsca wcale.

Sędzia. Czy słyszałeś?.. możesz iść do domu.

Obwiniony (lękliwie patrząc po sali — cichym głosem): Pozwól mi pan sędzia zostać jeszcze chwilkę, bo właśnie te skradzione spodnie mam na sobie; a tam oto widzę właściciela. Jak wstanę, to je zobaczy i.... pozna z pewnością.

---

Sędzia. Jakto Waniachu, za trochę wieprzowiny i piwa podjąłeś się ukraść woreczek z pieniędzmi?

Obwiniony (naiwnie): Ach! za takie pyszne jadło, i pan sędzia ukradłby go z pewnością!

---

## *Zagadnienia.*

1. Dla czego pies ogonem rusza?
2. Którego charta zając najwiecéj się boi?
3. Co jest pióro i papier?
4. Kto Izraelitów nauczył spekulować zbożem?
5. Jakie jest podobieństwo pomiędzy człowiekiem pijanym, a głupim?

## Odpowiedzi na zagadnienia.

1. Bo jest mocniejszym od ogona, inaczéj ogon ruszałby psem.
2. Białego, bo myśli że się rozebrał do koszuli, aby go lepiéj gonić.
3. Nie szydło i nie skóra.
4. Ich prorok Józef w Egipcie.
5. Pijanym zdaje się, że każdy jest pijany; głupim, że każdy głupi.

---

— Czy prawda, że w przysłowiach jest żywa mądrość narodów?

— Fałsz najczystszy!

— A to dla czego?

— Bo mówią: Wodę gotuj, woda będzie; — Kto smaruje, ten jedzie; — Znać pana po cholewach; gdy tymczasem wodę gotować, to się ulotni w parę; — Kto smaruje ten stoi; — a panowie w kamaszach, nie w butach chodzą.

---

— Mój drogi, daj mi trochę pieniędzy.

— Chyba późniéj, nie mam teraz ani chwili czasu.

— Ja też nie proszę cię o czas, tylko o pieniądze.

— To wszystko jedno, przecież czas to pieniądze.

---

Na jednym z domów wywieszono kartę dosłownie tu poniżéj przepisaną:

„Są dwa pokoje do wynajęcia zaraz, albo jeżeliby kto sobie życzył, to jeszcze prędzéj.“

---

Egipcyanie utrzymują że człowiek ma tylko dwa piękne dnie w życiu: ten w którym się żeni i ten w którym żonę na cmentarz odprowadza.

---

## Rady gospodarskie.

*Kołnierze wełniane u sukni wyczyścić* można najłatwiéj z potu, lub plam maślnych: wziąwszy z apteki amoniaku w 10 częściach wody rozpuszczonego i zamoczywszy w nim szczotkę, którą dobrze kołnierz wyciera się.

*Kit na drzewa.* Z najlepszym skutkiem używany kit na drzewa jest: ze smoły i utartych węgli drewnianych, który się smaruje jako maść na rany drzew i ziemią suchą zasypuje, aby się mięszanina nie lepiła w czasie ciepła i aby rany widać nie było. — Ponieważ smoła zawiera w sobie kreozot, tém każdy siłę zapobiegającą zgniliznie łatwo sobie wytłumaczy.

*Pociąganie wapnem drzew owocowych.* Pociąganie drzew owocowych znane jest wszędzie; ma ono na celu niszczenie mchów na korze rosnących, jako też rozmaitych owadów drzewom szkodliwych. — Na zastąpienie tego bielenia, które dla tego, że oko razi, często się zaniedbywa, poleca się następujący sposób: Corocznie szczotkują się drzewa ługiem, złożonym z dwóch części popiołu drzewa bukowego i jednéj części soli, z dodaniem szarego mydła.

*Środek przeciwko zwarzeniu się i skwaśnieniu mléka.* W południowéj Rosji, gdzie latem ciepło powietrza średnie dochodzi do 36° R., wieśniacy zapobiegają zwarzeniu się i skwaśnieniu mleka, przez dodanie do niego kilka kropel soku wyciśniętego z chrzanu.

*Hamburski uniwersalny olejek życia.* Rozpuszcza się 10 łutów olejku gwożdzikowego, 10 łutów olejku pomarańczowego, i $2^1/_2$ łuta olejku anyżowego w $11^1/_2$ funtach najmocniejszego wyskoku, — płyn zabarwia się następnie 15 łutami grubo utłuczonego korzenia alkanowego, — pozostawia dni 8, a w końcu filtruje przez bibułę.

Polecamy dra Rosy balsam życia jako najdoskonalszy środek, zobacz w inseratach.

Kto ręką nie pracuje — temu ręka niezdatna usycha; kto duchem nie działa — od tego duch Boży odstąpi. Dwa światy. T. I.

J. I. Kraszewski.

Praca goi najboleśniejsze rany i znośnem czyni co jest najnieznośniejsze. Kochajmy się.

J. I. Kraszewski.

Pięćdziesiąt lat pracy — pracy mozolnéj — często połączonéj z walką o byt, często pełnéj gorzkich zawodów, ale podtrzymywanéj niesłychaną siłą woli — niewidzianą dotąd potęgą genjuszu i bezgranicznem przywiązaniem do rodzinnéj ziemi .... oto w kilku słowach cały dotychczasowy żywot męża, o którym dziś świat cały ze czcią mówi.

Pięćdziesiąt lat mrówczego trudu dla dobra braci — marzenia o lepszéj dla nich doli!

Kto z nas, oddawszy na posługi ogółu choćby tylko trzecią część tak chlubnie przepracowanego półwiecza — nieśniłby już bronzu lub marmuru — niewymagałby (choć wewnętrznie, skrycie), aby przed nim cały naród uderzył czołem — aby imie jego przeszło w laurowych wieńcach do potomności?

Tymczasem Józef Ignacy Kraszewski (który jeden przedstawił w pracach swych prozą, wszystko to prawie, na co aż trzech wieszczów było trzeba) *), — gdy od lat kilku świat cały, a głównie polski naród, przygotowują się do złożenia mu swych dziękczynień i uczczenia tak olbrzymiéj pracy i tak olbrzymiego dla naszéj biednéj ziemi poświęcenia — odpowiada spokojnie: niezawstydzajcie mnie, bo uczyniłem tylko

*) Mickiewicz, Słowacki i Krasiński.

to, co Polak uczynić winien — spełniłem mój obowiązek, nic więcéj! A piszący niniejszy artykuł zna go osobiście i śmiało twierdzić może, iż w słowach powyższych, żadna fałszywa skromność się nie ukrywa. Kraszewski jest człowiekiem i Polakiem w tak ścisłem tego słowa znaczeniu, iż niepojmuje aby można było postępować inaczéj, aby mając talent, niepoświęcić go zupełnie dla dobra kraju — mając pięćdziesiąt lat nadprzyrodzonéj prawie siły twórczéj — nie pisać przez dwanaście godzin dziennie! Kraszewski nierozumie inaczéj życia.

„Człowiek stworzony jest do pracy, a praca jest rodzajem modlitwy Bogu miłéj“ powiada w jednem ze swych dzieł; w drugiem zaś: „Życie chorobą — lekarstwem praca.“ I tak też sam postępuje. Leczy się z życia pracą — pracą dla .... narodu.

Tak postępując — on jeden śmiało powiedzieć może, iż nieprzyjaciół wcale nieposiada, a Polska dumną jest, że w gronie jéj dzieci niema ani jednego, któreby nieuchyliło czoła przed wielkością tego genjuszu.

W życiu prywatnem skromny i cichy, ma zawsze czas, gdy chodzi o danie rady lub udzielenie wsparcia przewyższa Wielkich swą powagą i trafnością sądu a umie razem zniżyć się do Małych i nigdy, nikogo nieodtrącił od siebie; ma wiele w swym charakterze z Mickiewicza: nim zbada człowieka — pyta go prosto: „możeś niejadł dziś jeszcze?... możeś nieszczęśliwy?..“ Niepotępia nikogo — a gdy potępić musi — trzy razy tyle słów używa na uwzględnienie okoliczności, które popychają ludzi ku przepaści. W końcu — niewątpi i nigdy niewątpi w złote jutro narodu; wiara ta głęboka w słuszność naszéj sprawy, jest mu przewodnią gwiazdą w życiu; opromieniony jéj światłem idzie naprzód krokiem pewnym, i w każdéj jego pracy wyczytać można prorocze słowa: czemu wątpicie? ..

To też gdy kiedyś (oby to jak najpóźniéj nastąpiło) — pójdzie ledz na Wawelu, między staremi Polski królami — obok Kazimierzów i Tadeuszów — genjusze rozumu i miecza przyjmą ochotnie w swe grono ten genjusz pracy i pokoju.

Józef Ignacy Kraszewski, urodzony 28. lipca 1812 r. w Warszawie z Jana, chorążego Prużańskiego i Zofji z Malskich — małżonków Kraszewskich — rozpoczął swe nauki w szkołach Biały Radziwiłowskiéj, na Podlasiu, zkąd następnie przeszedł do Lublina, a nareszcie w 1829 r. do Świsłoczy a potém na uniwersytet Wileński, gdzie został do wydziału literackiego wpisany. W tymże roku rozpoczął swój chlubny zawód, którego pięćdziesiąty rok teraz upływa. W ciągu tego długiego lat szeregu, napisał Kraszewski przeszło sześćset tomów powieści polskich, z których każdą i każdy, mniéj lub więcéj wykształcony z niezmiernem czyta zajęciem. Dzieła jego prześliczną, barwną i poprawną polszczyzną pisane, są po większéj części przystępne nawet dla ludu; uderzają bowiem swojskością i podnosząc zawsze najpiękniejsze strony narodu, pełne są rad i uwag zdrowych, opartych na gorącem przywiązaniu dla rodzinnéj ziemi. Jemu to zawdzięczamy jeszcze, iż dając nam znakomite polskie prace, wypędził z pod strzech polskich nędzne, niesmaczne tłumaczenia obcych romansideł. Zaznajomiając kraj z wielką jego przeszłością, obudził w nim poczucie swojskości i rzucił promienie oświaty w najdalsze zakątki polskiéj ziemi.

I powiedzieć, że już pół wieku pracuje tak dla naszego dobra!

Z tych lat — siedmnaście przebywa na tułaczce, na obcéj ziemi; a tem boleśniéj wieść ta brzmieć w polskich piersiach powinna, iż pozbawił go ojczyzny nie wróg żaden, ale osobistość mieniąca się należącą do naszéj rodziny .... sławny margrabia Wielopolski. Lecz o dziwne zrządzenie losu! Dumny magnat, sam

potem wygnany — po zalaniu polską krwią Zygmuntowskiego placu w Warszawie (8. kwietnia 1861 r.) gdzie kazał wymordować do dwóch tysięcy bezbronnych kobiet, starców i dzieci a nazajutrz zaczął swą proklamację temi słowy: przecież już porządek publiczny został ustalony itd. — obrał siedzibę tuż koło domku Kraszewskiego w Dreźnie i tam, lata całe, straszną trawiony chorobą, jęczał i bolał i wy bezsilny, siejąc na wszystko przekleństwa.

Tymczasem biedny wygnaniec, pracował dnie i noc całe dla dobra Polski, i dziś doczekał się dnia, że świat cały go podziwia a rodzinna ziemia wieki szczycić się będzie, iż takiego syna wydała.

Kraszewski jednak nietylko jest rzeczywistym twórcą polskiéj powieści. Niezmordowany ten genjusz — w wszystkich prawie gałęziach wiedzy, świetne daje nam utwory i stał się prawdziwym świecznikiem narodu. Tomy prac jego, do liczby tysiąca dojdą z pewnością i rzeczywiście, najzdrowszy umysł ludzki i najbujniejsza wyobraźnia poety, daremnie siliły by się zgłębić tę wielką tajemnicę .... pracy. Niema on współpracownika i wszystko co tworzy, własną ręką pisze a często jeszcze przepisuje.

Miasto więc wysilać się na pochwały, po nad którem stoi nasz sędziwy Jubilat, powiedzmy z poetą:

„Na znak twój — przeszłość uśmiechnięta wstała
„I kipi życiem rycerskiéj drużyny —
„W bojowym szyku proporce rozwiała,
„Znów na orężne gotując się czyny.

„Wszystko powstało i wszystko ożyło!
„Bo śmierć jest kłamstwem w które nikt nie wierzy —
„Natchnione serca, znajdą pod mogiłą
„Gotowych w szranki wystąpić rycerzy.“

*Feliks K.*

---

# *Chwila wiary.*

(Obrazek.)

. . . . . .

. . . . . .

Dość długi, dość udatny i bardzo religijny wierszyk — wpadł mi w końcu zeszłego roku w ręce, w mieszkaniu mego przyjaciela Stefana R... literata.

Tak — i Stefan należał do téj wielkiéj rodziny szermierzy pióra — próbował sił swych na tém pełnem gorzkich zawodów polu, z domem przytułku lub łożem w lecznicy w perspektywie.

Spotykałem się z nim rzadko bardzo.

Po strasznych dniach 1870 i 1871 r. we Francyi — los zjednoczył nas na chwilę w Wiedniu; w 1875 r. w Warszawie, a w początku 1878, we wspólnéj wycieczce w okolice Białego morza.

Śród skwaru Algierskiéj pustyni, czy też śladami niedźwiedzia, brnąc po arszynowym śniegu na wspaniałych stepach lewego brzegu północnéj Dźwiny — miał zawsze wieczną swą cygaretkę w ustach — szyderczy uśmiech błądził mu po twarzy — ciemne oczy ciskały chmurne płomienie.

Z równą obojętnością i znudzeniem kołysał się w meksykańskiéj siatce, śród ogrodów jakiéj tiendy Texasu, jak i podziwiał bogactwa Sołowieckiego klasztoru, rzuconego na wyspę białego morza, jak olbrzymi duch wiary, ze złotémi skrzydły zanurzonémi w błękicie.

W październiku r. z. mieszkał w Stuttgarcie i tam to, zaszedłszy go odwiedzić, przeczytałem wierszyk o którym mowa.

— Od jakiegoż to czasu, mój Stefku, pisujesz podobne poezye? . . . spytałem od niechcenia.

Poczerwieniał trochę, ale odpowiedział spokojnie:

— Od czasu jak wierzę....

— W co?.. pytałem daléj.

— Od czasu jak wierzę!.. powtórzył z naciskiem, patrząc mi łagodnie lecz stale i prosto w oczy.

Pochyliłem głowę w milczeniu.

Stefan stał się dla mnie rodzajem olbrzyma.

— Po tém co pisałeś lat temu kilka?... zacząłem znów po chwili.

— A ty?...

— Ja, to co innego! Wybuchnęła raz krew gorąca — wyszumiała pierwsza młodość i lat cztery już zacieram smutne wrażenie. Wykolejony w życiu, postanowiłem wrócić na drogę i wierzę iż za chwilowe uniesienie, niebędę cierpiał życie całe.

— Tak samo zemną prawie; tylko że cały szereg dawnych wspomnień — wszystkie uroki lat dziecinnych — rozbudziło we mnie nie zdanie ogółu, że nadużywam zdolności pisania na złéj je pożytkując drodze — nie zarzut, iż trwonię te zdolności na bezpłodnéj niwie i że źle pracuję dla dobra drugich....

— Więc cóż?...

— Nawróciła mię, jedna niemiecka.... kula.

— Nierozumiem cię Stefku.

— Pamiętasz-że bitwę pod Coulmiers, we Francyi?

— Dla czego zapytujesz o to?

Potarł ręką czoło — jak człowiek chcący zeń spędzić natrętne myśli.

— Słuchaj, rzekł nagle: dużo masz dziś czasu?..

— Nawet do jutrzejszego rana, mój drogi.

Uśmiechnął się.

— Tak wiele mi go nie potrzeba; godzina lub półtoréj — wystarczy. Jeżeli więc chcesz, opowiem ci to, jednakże pod warunkiem...

— Żadnych warunków Stefku! Z góry ci bowiem oświadczam, iż najprawdopodobniéj opowiadanie twe kiedyś spożytkuję.

Pomyślał jeszcze chwilę.

Potem — wyjął z biurka maleńką szkatułkę, otworzył ją i pokazał mi wewnątrz cztery przedmioty:

Paczkę listów związanych czarną wstążeczką — fotografję — o dziewięciu mniéj więcéj calach kwad. powierzchni złotą blaszkę i . . . ową sławną kulę, spłaszczoną prawie zupełnie . .

Chciałem wziąć to wszystko w ręce.

Zatrzymał mię.

— Daruj! rzekł spokojnie. Są to moje relikwie — rzeczy najdroższe — nikt się ich dotknąć nie może.

Patrzałem na Stefana zdziwiony.

— Te listy są od . . . matki mojéj — ciągnął daléj — fotografja drogie jéj wyobraża rysy; na téj blaszce złotéj, jak widzisz, jest wyryty i emalją napuszczony obraz Chrystusa, a kula . . . . no siadaj i słuchaj mego opowiadania — dowiesz się rzeczywiście dziwnych rzeczy!

Wziął fotografję i trzymając w ręce, pokazał mi ją dokładnie:

Przedstawiała kobietę już w podeszłym wieku, o miłych, pełnych szczerości i łagodności rysach twarzy.

Ciemne oczy staruszki były łzą przyćmione, na licu wyryty smutek głęboki.

„Widzisz mój kochany, mówił Stefan: ojca straciłem mając zaledwie lat jedenaście.

„Niemiałem ani brata, ani siostry — została mi więc tylko . . . . ona.

„Nie miejsce tu dziś i nie pora opisywać ci bezgraniczne przywiązanie do mnie téj biednéj kobiety.

„Kochała mię miłością tém silniejszą że podwójną: matki i . . . Polki.

„I marzyła złotą przyszłość dla swego dziecięcia.

„Widziała je wzrastającem na pożytek braci — spłacające potem dług rodzinnéj ziemi.“

„Niebyło ofiary, niebyło poświęcenia, przed któremi cofnęła by się ta święta kobieta — ta szalenie miłująca swą ziemię Polka.

„Słusznie mówiłeś niedawno mój Feliksie, pisząc o wychowaniu: nauczmy dziewczęta nasze kochać ro-

dzinną ziemię. nie wydzierajmy im ojców wiary — a przyszłe żony i matki dadzą nam znów żelazne młode pokolenie.

„Matka moja była z tego szeregu niewiast, któremi szczyciła się dawna Polska, które miały Boga w sercu, modlitwę na ustach — dłoń zawsze otwartą dla nieszczęśliwych.

„Kobiety takie, przy wszystkich surowych cnotach Spartanek, miały wszystkie najwznioślejsze przymioty Chrześcijańskiego serca.

„I dla tego to, z łona ich powstawały owe olbrzymy miłości i wiary, których nam świat zazdrości, które z naszego narodu stworzyły niegdyś mur granitowy przeciw pogaństwu i ciemnocie.

„Lecz dość o tém — a niemyśl że przesadzam.

„Patrz na dzisiejsze karłowate pokolenie — patrz na te lalki w katarynce pozytywizmu, nakręcane kluczykiem równo-uprawnienia*)! . . . C'est vraiment pitoyable! jak mówią Francuzi.

„Z porcelanowych cacek tych, odzianych w paryskie stroje — mamy i będziemy mieli automaty grające na fortepianie, paplające przynajmniéj pięcioma językami — tańczące układnie jak owe berlińskie Sznapsle, Friedle i Diany — pieski, które niedawno po świecie obwożono — będziemy jeszcze mieli znakomite artystki na deskach komedyi życia ale . . . . ani jednéj Chrzanowskiéj! . . ani jednéj z całego Panteonu tych żon i matek, które umiały być tak skromnémi w szczęściu a tak wielkiémi w niedoli!

„Matka moja była jeszcze na dawny sposób wychowana.

„Głęboka wiara w Boga, wyrodziła w niéj głęboką w przyszłość wiarę.

---

*) Piękne moje czytelniczki raczą mieć żal za te ustępy — tylko do mego przyjaciela, Stefana R . . . .

„Gdy huragany życia rzuciły mię w świat szeroki — gdy bez przewodniéj gwiazdy w téj pielgrzymce, na każdym kroku spotykałem zawady — co dnia nowe rozczarowania i zawody nowe, i co dnia także gorzkło moje usposobienie, dziczał charakter, tchnęło cynizmem serce a pierś była tak pusta i tak niedolą skołatana, że w niéj żadne echo, nawet rozkosznych a smętnych wspomnień z ojczyzny już niemogło znaleźć odgłosu — matka moja pisywała mi długie, pełne wiary i pociechy listy.

„Jeżeli bluźnierstwa, któremi rzucał w świat chory wędrowiec, pewno łzy jéj wyciskały, truły życie i bieliły przedwcześnie włosy — w listach jéj były zawsze dla syna: skarby niczem niewzruszonego przywiązania i słowa niczém niewzruszonéj wiary!

Wyjął jeden z listów, rozwinął go i odczytał mi zakończenie:

„Płaczę i modlę się...

„Płaczę, bo cierpię... bo mnie dręczy twoja niedola; a modlę się, bo mam w lepsze jutro wiarę. W dniu, w którym przypomnisz sobie, żem ci chłopięciu, krzyż kładła na czole i że tego świętego znaku zetrzeć ci się z czoła niegodzi... będziesz szczęśliwy.

„Ty, mój biedny, niemodlisz się już od lat wielu — wielu bardzo. Wiem to. Wiem także, iż do wiary zmuszać niemożna; ale utracona — wróci z pewnością, dziś czy jutro. Ja w to wierzę. Choć więc ty synu niemodlisz się.... nic nieszkodzi. Ja ztąd, co chwila, modlę się za ciebie. Modlę się gorąco i szczerze, a Bóg mi widocznie przedłuża to nędzne życie choć jestem stara i cierpiąca... W naszym kościółku, na Lesznie, tu w Warszawie — gdzie niegdyś dziecko, klęczałeś przy mnie synu — zaczerpuję pod krzyżem co dzień nowe siły i z dziś na jutro nowe w schorzałą pierś wstępuje życie.

Nieumrę jeszcze... ah, nie!.. bo gdybym dzisiaj spoczęła przy twym ojcu.... któżby odwracał gromy

od twéj biednéj, szalonéj głowy, kto szeptał tysiąc razy co dzień, w tém tu nędzném poddaszu: panie! tam, daleko, na krańcach ziemi... wszystko moje błądzi po bezdrożu... wszystko co kocham!... Tam mój syn i błagam cię o panie! na mnie skieruj gniew twój i niech na mnie, bardziéj jeszcze zaciąży twa prawica!... Dla niego — poczekaj jeszcze... ja mu wymodlę nawrócenie....

. . . . . .

. . . . . .

W małym saloniku Stefana nastała głucha cisza. Umilkł, a ja nieśmiałem za silnem nawet tchnieniem mięszać tego spokoju świętych wspomnień, takiéj wiary i takiéj boleści.

* *
*

Wyjął obrazek ze szkatułki i opowiadał daléj:

„Pamiętasz, w dniu owym, gdy rozbiliśmy korpus dzikich Bawarów?... pamiętasz rozpaczliwe nasze pięciokrotne napady na zamek Bâcon — rzeż w nim w dziedzińcu, w przysionkach i we wszystkich niemal salach zgranatowanéj już i płonącéj téj wspaniałéj budowy?

„Świt owego dnia był błędny, mglisty — drobny śnieg pruszył uparcie — wiatr ostry, gwałtowny, rzucał nam go w oczy — oślepiał nim prawie.

„Jak widm szeregi mknęły szturmowe kolumny w bój zacięty.

„Po skrzydłach postępowały długie artyleryjskie pociągi — tu i owdzie, pod zasłoną na prędce usypanych wałów, odprzodkowywano działa — z głuchym szmerem na głównym froncie bojowéj linji, osadzano na matowych lufach broni, jak srebro połyskujące, w kształcie szabel bagnety.

„Na wzgórzach, za nami, czerniały półkolem nowe jeszcze bataljony — to rezerwa zajmowała swe obserwacyjne stanowisko.

„Pułk nasz, jak to sobie przypominasz pewnie, pod zasłoną Bakońskiego lasku, miał w danéj chwili, bądź co bądź, zdobyć środkową bawarską, polową redutę.

„O siódméj — gdy szarzało zaledwie — przywieziono nam pocztę — dla wielu.... ostatnią.

„Pułk ustawiony szwadronowym frontem — tyłem do Bakonu — dostał tylko co pozwolenie zejścia z koni, i zaczęto gotować ulubioną kawę.

„Ty byłeś wtedy — jeżeli się niemylę — zajęty jeszcze żegnaniem naszych gospodarzy z Malmy, a może tylko pięknéj ich córki... Klary.

„Ach, mój drogi! gdy krótki, potrójny dźwięk trąbki oznajmił nam pocztę — ręczę ci, iż naszych siedmset serc, jak jedno, żywiéj uderzyły.

„W powietrzu czuć było aromat wybornéj Mokki — za godzinę najdaléj, w szalonym pędzie naszych poczciwych, berberskich rumaków, drogich towarzyszów dalekich wędrówek po stepie, mieliśmy rzucić się na dwanaście dział niemieckich, ziejących śmierć do koła — za godzinę, mieliśmy być zdziesiątkowani — umierać z bagnetem w piersiach wołając: niech żyje Francya!.. niech żyje Polska! i krwią naszą uświęcać wiekowe dla Gallów przywiązanie...

„A jednak, gdy zaczęto czytać głośno adresa listów, wiarusy o ulubionéj kawie i o straszliwéj śmierci zupełnie zapomnieli.

„Każdy żołnierz, każdy oficer, biorąc list do ręki, pomyślał lub szepnął z cicha: po bitwie... odpiszę.“

„A iluż nieodpisało?...

„Przy żywém, jasném ognisku, oparty o bliskie drzewo, marzyłem.... o ziemi na wschodzie!

„W wigilję dnia tego, skleciłeś nam wierszyk, p. t. „Skon na stepie“ i rzecz dziwna, słowa z majaczeń umierającego żołnierza o rodzinnéj ziemi, wryły mi się w pamięć od razu.... przyszły na myśl w chwili gdy zawołano:

„Porucznik Stefan R..... paczka z Polski.“

Urywka zeń, do dziś niezapomniałem:

..... „Jéj pocałunek marzyłem wczora...
Uścisk rozkosznéj pełen słodyczy...
Byłem tam we śnie: wieczorna pora...
Dziaduś różaniec przy ogniu liczy...
U stóp znajomy mi pies legawy,
Co był tak niegdyś na łowach szparki...
Na ścianie szabla..... ślad przeszłéj sławy...
I dwie donośne, na krzyż janczarki!

..... „Ona... w zadumie... jak posąg z spiżu...
Wiek ciało biednéj ku ziemi zgina...
Łzawy wzrok zawisł na Pańskim krzyżu,
A usta.... szepczą wciąż imię syna!..
— Zła go znać gwiazda w stepy powiodła! —
I patrzy na krzyż, wierząc że skróci
Ból, że wyczyta z świętego godła:
Czy syn powróci... kiedy powróci!...“

. . . . . .

„Zbudzony z marzeń, rozerwałem gorączkowo drogą posyłkę: była w niéj fotografja, list krótki i ten, na złotéj blaszce, obrazek Zbawiciela.

Wziął list ze szkatułki i przeczytał mi go:

„Drogi Stefku!

„Drżę na myśl samą, że może już będzie za późno! Poczta za chwilę odchodzi, w kilku więc tylko słowach rzecz ci tę wyjaśnię:

„Widziałam cię na ośnieżoném polu — na pół przywalonego zabitym czarnym koniem... z ust płynęła ci krew potokiem; do koła wrzał bój zacięty. Jedni z walczących byli w ciemnych hełmach z zielonémi kitami, drudzy, w purpurowych francuskich czapkach na głowie. O kilka kroków ustawione działa, ziały słupami ognia i dymu.

„Posyłam ci obrazek nasz rodzinny. Twoi przodkowie nosili go pod zbroją, na piersiach; — jeden z nich miał go pod Wiedniem — jeden w legjonach Dąbrowskiego we Włoszech, jeden . . . . . Przerywam mój Stefku — zaklinając abyś go zaraz umieścił pod mundurem. Mam przeczucie, że w tych dniach wielką stoczycie bitwę . . . mój Boże . . . aby tylko niebyło za późno! . . .

„Ja jestem tak cierpiąca, że od dni już wielu nieopuszczam mego pokoiku; w domu jednak modlę się za ciebie, modlę się bez przerwy . . . .

„Słuchaj Stefku — nieśmiéj się i nieszydź twym zwyczajem z tego co nazywasz przesądem staréj kobiety; zrób to dla mnie i noś ten obrazek. Ja mam trochę, dużo nawet żalu do ciebie za to, żeś pierwszy w naszéj rodzinie ośmieszył i sponiewierał w twéj książce, to co przez lat tysiąc, dwieście rycerskich pokoleń kochało i czciło . . . . . Dnie moje policzone . . . . przebaczam ci i błogosławię, lecz zawsze noś ten obrazek, pamiętając że dla twéj matki był relikwią i że bardzo kochać musi syna, gdy się z tym skarbem, w godzinę już śmierci prawie, dobrowolnie rozdziela.

„Stasia ci się przypomina . . . odpisz na jéj ręce czy mnie straszne nie zawiodło przeczucie.“

. . . . . .

„Zaledwie skończyłem czytać — głuchy łoskot dalekich strzałów doleciał nas od strony Coulmierskiéj drogi: łańcuch to naszych tyraljerów rozpoczynał krwawą Epopeę owego dnia.

„Około dziewiątéj, adjutant d'Aurelle de Paladines'a przywiózł pułkownikowi rozkaz do natarcia.

„Pod zasłoną lasku, zbliżyliśmy się stępem na pięćset metrów do reduty i siedmset koni spadło jak huragan stepowy na wroga.

„Mieli jednak Bawarowie cały bataljon strzelców dla zasłony, i mimo tak małéj odległości, dwa razy

powitał nas deszcz kul i dwa razy łamały się zdziesiątkowane szwadrony.

„W chwili jednak gdy strzelcy poszli w rozsypkę i zaczęliśmy rąbać artylerzystów — jeden z nich pchnął mię bagnetem w sam środek piersi.

„Pchnął i . . . zgłupiał z podziwienia.

„Bagnet złamał się przy lufie.

„Nim go zdołałem dosięgnąć pałaszem, rzucił się o kilka kroków w tył, zmierzył do mnie i padł strzał niosący mi śmierć pewną.

„Poczułem na piersiach odurzające uderzenie i wylatując z siodła, straciłem przytomność zupełnie.

„Gdym wrócił do zmysłów — spostrzegłem obok, mego biednego „Sokoła“ z poszarpaną czerepem granatu piersią. Krew zalewała mi usta, ale . . . niebyłem ranny . . .

„Przy mnie klęczał nasz poczciwy lekarz de Roselles trzymając w ręku sondę i złoty mój obrazek, pogięty i krwią zbryzgany.

„Patrz, patrz, poruczniku! zawołał śmiejąc się: I bagnet i kula, zatrzymały się na téj blaszce. Masz szczęście szalone . . . . niejesteś wcale ranny.

„Podano mi świeżego konia i chwiejąc się jeszcze trochę, z kłującym bólem w piersi, dosiadłem go jako tako.

„Zdobytą bateryę, zaraz na Niemców obrócono a my, wróciliśmy na dawne stanowisko.

„Oto, widzisz mój drogi, w kilku słowach moja przygoda!

„Nazwij to zbiegiem okoliczności — szczególnym trafem . . . . czem chcesz nareszcie — dla mnie, ocalenie to, ocalenie podwójne od niechybnéj śmierci, stanowi epokę w życiu.

„Od owego dnia . . . . wierzę.

— Lecz proszę cię Stefku! daruj pytanie moje — co się z matką twą stało .... co ze Stasią poczciwą? ....

„W miesiąc po ukończeniu kampanji, przyjechała do Orléanu, gdzie mieszkałem wtedy stale.

„Była w żałobie . . . . śliczna smutkiem swym i wielka prostotą i poświęceniem kochającego serca.

„Matka twoja, już tam Stefanie! rzekła wskazując na niebo. Myślałam że lżéj ci przepłynie życie, gdy będziesz miał przy sobie kogoś co jéj zamknął oczy, przejął ostatni pocałunek i usłyszał ostatnie słowa miłości, błogosławieństwa dla syna i jeszcze . . . . .

Umilkła — łzy puściły jéj się z oczu.

— I jeszcze . . . . Stasiu?

— Słowa zupełnego . . . . przebaczenia!

— A Stasia była sierotą i prócz matki mojéj, niemiała nikogo na świecie.

I raz pierwszy spojrzałem na blade, blądwłose dziewczę, oczami szczeréj życzliwości.

Miało na szyi maleńki złoty krzyżyk z turkusami, zawieszony na aksamitnéj wstążeczce — na palcach dwie mocno już zużyte obrączki ślubne.

I krzyżyk i obrączki poznałem od razu.

— Stasiu, chcesz być moją żoną . . . Stasiu? . . .

— W obec prawa? . . . .

— I w obec Boga także . . . .

Drobne, śliczne rączki sieroty, oplotły mi szyję i szepnęła drżąc cała:

— Dobrze, jeżeli co dzień, wspólnie, modlić się będziemy za tę, co cię tak kochała i co tak wierzyła w twe nawrócenie!

— — — — — — — — — —

— — — — — — — — — —

Otworzył drzwi w głębi i zawołał w stronę dalszych pokojów:

— Stasiu! proszę tutaj na chwilę.

Śliczna, młoda kobieta, w poważnym stanie, rumieniąc się na widok obcego, weszła do saloniku.

Za nią weszła i wiejska dziewczyna z Mazowsza — ze znaną kraciastą chusteczką na głowie, w błękitnym

staniku i w szaréj, kamlotowéj spódniczce. U gorsu, na białéj koszuli, niebrakowało wstążek i korale czerwieniły się na szyi.

Na ręku trzymała trzyletniego malca, który się kazał ustroić w tekturowy kask ułański i przypasać sobie do boku ogromny pałasz .... także tekturowy.

* *
*

U państwa Stefanostwa, spędziłem naturalnie wieczór cały.

I długie godziny przegawędziliśmy o przeszłości, przeplanowali o jutrze.

Potem, wróciłem do domu, trochę nieswój, smutny trochę .... może być dla tego, że dawno już niewidziałem z tak bliska szczęścia w domowém zaciszu, a może i dla tego, że podobne, nigdy mię niespotka w życiu! *Feliks K.*

---

## Rycerz zakonnik

(Obrazek z przeszłości).

Podczas gdy w ziemi naszéj panował syn finlandzkiego Jana i bogobojnéj córy, siostry Zygmuntów, w ubogim, szlacheckim zaścianku przyszło na świat pacholę, które siłą wiary i dzielnego ducha potęgą, zbawić miało w przyszłości ojczyznę.

Młodzieniaszek ów od lat najmłodszych odznaczał się pomiędzy rówieśnikami dziwną roztropnością i powagą: wtedy gdy inni ubiegali się za płochemi igraszki, czerpał chciwie w skarbach wiedzy, lub w cichym odludnym zakątku wznosił myśl do nieba.

— Jużto — moja panno — mawiał często ojciec jego do żony — z naszego Janka niewątpliwie Bogu i ludziom wyrośnie pociecha.

— Wiecie co, panie mężu — odrzekła mu pewnym razem, — śniło mi się dzisiejszéj nocy, że syn nasz prze-

chadzał się po łące w jasnéj szat bieliźnie, i światłość jakaś promienna okalała mu skronie; w jednéj ręce trzymał miecz wzniesiony jakby do pogromu, drugą zaś przyciskał do piersi szkaplerze. Dziwnie błogie uczucie napełniło mą duszę: podczas tego widzenia zdało mi się, że spełnione najmilsze me nadzieje; że widzę Janka sługą świętych ołtarzy: nie rozumiałam tylko, czemu ten miecz błyszczy w jego prawicy?....

— Miecz oznacza, że nie poleni się do szabli, a w razie potrzeby potrafi walczyć mężnie na polu bitwy — odparł żartobliwie ojciec. — Widzisz zatém, moja jejmość, że nie ma co myśleć o zakonnym kapturze: zobaczysz raczéj kiedyś syna okrytego zbroją, jak przystało na męża rycerskiego stanu.

— Co téż waszmości w głowie, — przerwała z widoczną niechęcią niewiasta, — Janek żołnierzem! On, co powiada, że na widok szabli wspomina zaraz, jak to wszelkie bójki pogańską są praktyką pomiędzy ludem chrześciańskim, i przejmuje go wtedy niewymowna boleść i zgroza.... Że nie da się ustraszyć napadnięty, to rzecz inna: nie darmoć przecie krew szlachecka w nim płynie!

— No, uspokój się jejmość; nie będę się przecież sprzeciwiał jego powołaniu: toż podrastają jeszcze drudzy synowie na usługę króla i rzeczypospolitéj.

Gdy tak oboje rodzice spierali się nieraz o przyszłość dziecięcia, Bóg już wyznaczył mu drogę promienną, cichą zasługą i chwałą.

I zdarzyło się jednego razu, że pilne i rozumne chłopię wczytało się bacznie w cudowną legendę, która żywo utkwiła w młodéj wyobraźni.

Była to opowieść o początkach obrazu Maryi, przechowywanego od dawnych wieków jako najdroższy klejnot w polskiéj Koronie; brzmiała w następującéj osnowie:

„Wkrótce po śmierci Przeczystéj Dziewicy, tęskne jéj towarzyskie zgromadzenie w Jeruzalem, zapragnęło żywo posiadać wizerunek swéj świętéj opiekunki; Łu-

kasz, mąż Boży, opowiadający po świecie naukę Chrystusa, trudnił się niekiedy malarską sztuką i obiecał uczynić zadość ich żądaniu. Aby doskonalszą była pamiątka, umyślił przedstawić Świętą Dziewicę na blacie cyprysowego stołu, przy którym zazwyczaj ręcznéj oddawała się pracy; daremne jednakże były wszelkie jego ku temu usiłowania: nie mógł uchwycić podobieństwa. Pewnego razu zasnął strudzony; ocknąwszy się znów chwycił pędzel do ręki: lecz o dziwy! twarz Maryi już tkwiła na drzewie! Ukorzywszy się przed dziełem niewidzialnéj ręki, dokończył reszty obrazu i powiedział cud niewiastom.

„Trudno wypowiedzieć ich radość: w długie lata, jako skarb najdroższy przechowały wizerunek święty; po śmierci ostatniéj z nich przeszedł dopiero w ręce innych rodzin chrześciańskich, od których dostał się pobożnéj Helenie matce Konstantyna. Za jéj staraniem Leo, książę ruski, wywiózł go z Carogrodu dla ochrony od zniszczenia obrazoborców.

„Umieszczony w wspaniałéj bełzkiego zamku kaplicy obraz Maryi, przetrwał kilka wieków na ruskich książąt dziedzinie: garnęły się doń wtedy niezliczone tłumy pobożnych, ufnych w przyczynę Bogarodzicy i nie jednemu silna wiara wymodliła łaskę.

„Gdy z wypadków kolei Władysław na Opolu dzierżył przyłączoną do Polski Ruś Czerwoną, dzika horda Tatarów napadła na Bełzki zamek. Długo szczupła załoga broniła się mężnie, w końcu jednakże wszyscy dostrzegać poczęli z rozpaczą, że zginąć muszą ulegając przeważnéj sile. W pośród ogólnego popłochu, sam tylko książę nie dał przystępu do swéj duszy zwątpieniu i trwodze. Ufny w opiekę Świętéj Dziewicy, odpierając raz naraz straszliwe ciosy, modlitwą wzbijał się do nieba. Marya wynagrodziła wiarę swego rycerza. W chwili, gdy upadła w gruzy ostatnia baszta, noc ciemna rozpostarła się dokoła: przerażeni barbarzyńcy poczęli uciekać obracając przeciw sobie zabójce żelazo,

a wierny i mężny Książę wraz z wyswobodzonym ludem, wdzięcznie zanucił: „Witaj Królowo nieba!“

„Wkrótce po tém zwycięztwie ujrzał we śnie Maryę: w blasku promiennéj chwały objawiła mu, że pragnie, aby wizerunek Jéj umieszczony był odtąd w pośród ludu, który piersiami swemi, niby wałem osłaniał świat chrześciański od pogańskiéj przemocy.

„Władysław na Opolu opowiedział widzenie swe świętéj królowéj Jadwidze, i za połączonym staraniem obojga, wzniosły się pierwsze mury Jasnogórskiéj świątyni.

„Od owego czasu dzieje cudownego wizerunku łączne już były z dziejami Polskiego narodu. Każda epoka składała u ołtarza Maryi swój liść wawrzynu lub cierniowy wieniec, a kraj cały, od Karpat szczytów aż do bursztynowego Baltyku wybrzeża, brzmiał nieustannym hymnem chwały swéj potężnéj Orędowniczki.“

Rozgorzało serce pacholęcia cudowną opowieścią, miłość Maryi i miłość ojczystéj ziemi silném i głębokiem uczuciem, niby nieśmiertelników wiankiem, oplotła jego duszę. Ilekroć zdarzyło się późniéj, że mowa była o zakonie powołanym do stróżowania obrazu Bogarodzicy i świątyni Jéj arki narodowych pamiątek, oczy młodzieniaszka zawsze dziwnym i tajemniczym płonęły blaskiem.

. . . . . .

Panowanie ostatniego z Wazów cierniem i bólem było naznaczone; ziemia nasza rozdarta krwawemi rany i blizko już zgonu ojczyzna, ocalała wtedy cudotwórczą wiarą pokornego zakonnika. Podobnie, jak niegdyś Opolski książę, on ufał opiece Maryi, a ufności téj zachwiać nie mogły żadne gromy i burze.

Padały kule ogniste, waliły się murów odłamy, a on stał na wałach pogodny i niewzruszony, przyciskając jedną ręką do piersi szkaplerz, drugą zaś wznosząc w niebo, zkąd miał wymodlić pogrom nieprzyjaciół.... Ziściło się senne niegdyś widzenie pobożnéj matki: mąż ten albowiem był owém pacholęciem

pięknych nadziei, które obecnie spełnił wiek dojrzały. Imię Augustyna, które przybrał wraz z suknią kapłańską obyczajem zakonnym, zasłynęło szeroko w całéj Polskiéj ziemi.

Ocalała Jasnogórska warownia, ocalał następnie kraj cały: wdzięczny król, wierny czci rycerskiéj i pobożnéj naddziadów dla Bogarodzicy, u stóp Jéj ołtarzy złożył cudownie wyzwoloną koronę.

Od owego czasu, niewątpliwie wiele zmian zaszło dokoła: legły w pokoju i chwale całe pokolenia mężnych obrońców ojczyzny, legł obok nich w cichym grobie i rycerz zakonnik; lecz pamięć ocalenia potęgą ducha pełnego ufności i wiary, przetrwała długie lata, a wyniosła wieża Jasnogórskiéj świątyni, niby latarnia morska, wzkazująca bezpieczną przystań żeglarzom wśród burzy, przypomina, że *gwiazda zaranna,* któréj wizerunek mieści, zawsze jednakim blaskiem miłości przyświeca ziemi, co ją obrała swą Królową.

*A. z Ch. Borkowska.*

---

## Do . . . . .

Znasz-li ten kraj, gdzie kwitną
Nad grobami piołuny?
Gdzie niebo twarz błękitną
W szare kryje całuny?

Gdzie pola kośćmi siane,
Las szumi pieśń cmentarną;
Rzeki łzami wezbrane
Przez ziemię płyną czarną.
Kraj ten smutny, ubogi
Ciągnie serce tułacze;
On nam nad wszystkie drogi:
My z nim, on z nami płacze.

*J. I. Kraszewski.*

---

## Pożegnanie poety.

Nie dla mnie szczęście, nadzieja w twém oku,
Nie dla mnie rozkosz w ustach koralowych!...
Napróżno gwiazda kocha się w obłoku,
I próżno błaga, by na lazurowych
Spoczął przestrzeniach; — on sobą nie włada,
Wicher pod niebem rozkazy mu jęczy,
I prze na gromy, na czarnych chmur stada,
Ku jakiéjś w dali migającéj tęczy!...

I już łzy twoje i twoje westchnienia
Dla moich pieśni nie będą nagrodą!...
Słowik odlata z kalin, z nad strumienia,
I pozostawia w smutku lilię młodą,
Któréj tak czule śpiewał co wieczoru:
Że strumień szemrał, iż on dla niéj żyje;
Aż raz, wiatr przyniósł jęk róż z nad Bosforu
I dla róż, słowik porzucił liliję!...

Gwiazdo ty moja! lilijo ty smętna!
Już dłużéj śpiewać nie będę przy tobie,
W piersi méj biją piorunowe tętna,
I słyszę jęki braci méj w żałobie,
I słyszę rozkaz po nad moją głową,
W ogniu błyskawic, w chmur podartych fali:
„Pieśniarzu! prowadź tę rzeszę grobową
„Ku tęczy życia — migającéj w dali....

*Ludwik Brzozowski.*

---

## U wieży.

(Dumanie.)

Piastowska wieża — pamiątek skarbnica —
Dziesięciu wieków skamieniałe słowo!
U stóp jéj siadłem i marzę....

Wiatr z niedalekich gór mi chłodzi lica,
Szeleszczą jodły posępne nad głową,
Stu widm wskazując mi twarze.

Piastowska wieża!
Więc tu owe były
Przodki Łokietków — Chrobrych — Bolesława —
Praojce króla dla kmieci? —
Może podemną jeszcze ich mogiły
Strzeże uspiona w tarczach z orłem sława,
I orlim lotem znów wzleci?

Może w tych murach co przetrwały duchem
Żelaznych ludzi i żelazne trumny,
Piorun się kiedyś zapali....
A olbrzym wieków, wstrząśnięty wybuchem,
Jak samsonowe strzaska się kolumny
I wroga gruzem przywali!...

Może!...
Lecz cicho.... pieśń słyszę, pieśń wiary:
„Boga Rodzico!“.. ach, jak cudnie marzę....
Wzrok-że mnie mami, słuch zwodzi?
Wieją dwubarwne na przedzie sztandary,
Szum srebrnych skrzydeł na barkach husarzy:
Zwiastun żelaznéj powodzi!

Naprzód!... i groby pękają z hałasem,
Wstają rycerskie hufce w zbrój zakute,
Rojno śród ciszy wieczora...
Nieprzejść tym włóczni najeżonych lasem..
Wianek gór wtórzy piorunową nutę..
Wstają umarli... więc pora?!

— — — — — — — — — — — — — — —
— — — — — — — — — — — — — — —

Nagle, tam, w dole, tuż u wieży prawie
Świst słychać: w pary i dymów wytrysku
Hasła zmieniają się żywo....

Więc pora?!...
Patrzę, w śnie-żem czy na jawie?..
Mój Boże! w naszych pamiątek ognisku,
Niemcy gotują dziś..... piwo!

*Feliks K.*

---

## Cóż wtedy?

Jakie to szczęście, jeżli kto czeka
Na nas — naszego powrotu
Wygląda, wiejąc chustką z daleka,
Jak orzeł skrzydłem do lotu!

Jakie to szczęście, w progi swéj chaty
Zapukać, i u ogniska
Marzyć dnie lepsze — nieba łaskawsze!..
Ach, komu płomień ten błyska,

Znużone lice, światłem bez granic,
Olśni jak noce pochodnia...
Ten go już pewno nie rzuci za nic,
Bo rzucić — byłaby zbrodnia!

. . . . . .

Lecz jeżli czyich stóp opylonych
Polizać nawet pies nieśmie...
W którą tylko zwróci się stronę,
Mówią: przyszedłeś za wcześnie...
Albo: za późno!...
Z rozpaczą w łonie,
Choćby i błądził pół wieka, —
Spotyka chłodne serca i dłonie,
A nigdzie, nikt go nie czeka...

Cóż wtedy?...
Zabrzmi przekleństwa słowo,
Lub przebaczenia... któż zgadnie?...
I nędzarz, tłumiąc ból w sercu — na dnie —
Pójdzie się tułać na nowo.

*Feliks K.*

---

## *Po ślubie.*

Kochałem ją szalenie
Kochałem wiernie — szczerze —
Ach, na jedno jéj słowo,
Na jedno jéj skinienie,
Dałbym życie w ofierze!

W noc po ślubie, majową,
Wszedłem w cichą komnatę:
Ona — drżąca, w purpurze,
Z ukrytą w dłoniach głową,
Strojna w dziewiczą szatę,
Znać tłumiąc uczuć burzę
Siedzi łzawa — milcząca.

Klękam u nóg jéj... patrzę
W te cudne modre oczy....
Ach, pocałunek zatrze
Ślad smutku, a gorąca
Pieszczota — wstydu chwilę!
Na jawie sen uroczy:
Kwiaty — błękit — motyle!

W ramionach mych drży, blada,
Czując uścisk nie bratni...
Z główki wianuszek spada,
Z łona rąbek ostatni....

Z ust się skarga wyrywa
Skarga cicha: mój Boże,
„Jaka ona szczęśliwa!!“
„Kto? — W tém żona odpowie:
— A któż inny być może,
Jak nie pani R..... nowy
Miała strój brylantowy,
Jak z gwiazd wieniec na głowie...
Jako ona szczęśliwa!! —

*Feliks K.*

# INSERATY.

Gruntowna i szybka pomoc

**dla cierpiących na żołądek i spodnie części ciała.**

Utrzymanie zdrowia zależy po największéj części od czyszczenia i czystości soków i krwi, tudzież od ułatwienia dobrego trawienia. Aby to osięgnąć, jest najlepszym i najskuteczniejszym środkiem:

# Dr. Rosy Balsam życia.

*Dr. Rosy Balsam życia* odpowiada najzupełniéj wszelkim tym wymaganiom, gdyż ożywia całą czynność *trawienia,* wytwarza *zdrową i czystą krew,* a ciału przywraca napowrót dawniejszą siłę i zdrowie. Na wszelkie dolegliwości trawienia, mianowicie *brak apetytu, odbijania kwasami, wzdęcia, wymioty, kurcz żołądka, zaflegmienie, hemoroidy, przepełnienie żołądka potrawami* itd. jest pewnym i uznanym środkiem domowym, który z powodu doskonałego skutku zyskał w bardzo krótkim czasie ogólne rozszerzenie.

**Wielka flaszka kosztuje 1 złr., pół flaszki 50 ct.**

Można przejrzeć bardzo wiele podziękowań. — Balsam rozsyła się na wszystkie strony za zaliczką należytości.

Szanowny panie Fragner!

Żona moja cierpiała na uporczywy kwas żołądka, który ją dzień i noc boleśnie trapił i przeciw któremu żadne lekarskie środki nie pomagały. Za poradą pewnego dobrego znajomego, spróbowała moja żona Pański *Balsam życia dr. Rosy,* który rzeczywiście nadzwyczajnym się okazał, kurcz żołądka zupełnie zniknął, a zdrowie i siły mojéj przez tyloletnie cierpienie bardzo znękanéj żony wróciły napowrót. Uważam więc za stosowne, złożyć Panu moje podziękowanie z życzeniem, aby wszyscy podobnie cierpiący Pański Balsam zakupowali, gdyż wyleczenie niezawodnie nastąpić musi.

Proszony przez moich sąsiadów, zamawiam zarazem 12 wielkich flaszek za zaliczką. Z wysokiem szacunkiem

Karlsdorf, 10. stycznia 1871. **W. Meier,** właściciel gruntu.

***Zwraca się uwagę!***

*Celem uchronienia się od niemiłych nieporozumień, upraszam kupujących, aby zawsze wyraźnie żądali:* ***Dr. Rosy Balsam życia z apteki B. Fragnera w Pradze,*** *gdyż dostrzegłem, że kupującym w niektórych miejscach dowolną jaką miksturę dawano, jeżeli oni po prostu balsam życia a nie wyraźnie* ***Dr. Rosy Balsam życia*** *zażądali.*

---

Tamże jest też do nabycia:

# Praska uniwersalna maść domowa,

**pewne i doświadczone lekarstwo**

**do wyleczenia wszystkich zapaleń, ran i wrzodów.**

Ta maść bywa z pewnym skutkiem używaną przy *zapaleniu, zatrzymaniu się mleka i zatwardzeniu piersi u kobiet* przy odstawieniu dziecka od piersi; przy *wrzodach się ropiejących, wrzodach krwawych, pęcherzykach ropnych, karbunkułach;* przy *wrzodach paznokci,* tak zwanéj *zanokcicy* na palcu u ręki albo

palcu u nogi; przy *stwardnieniach, napuchnięciach, nabiegnieniu gruczołów;* przy *nadrostkach tłuszczowych i martwéj kości;* przy *reumatycznych i podagrycznych napuchnięciach;* przy *chronicznych zapaleniach stawów na nodze, kolanie, ręce i biodrach;* przy *nadwerężeniach;* przy *odleżeniu chorych,* przy *pocących się nogach i nagniotkach;* przy *popadałych rękach i do liszaja podobnych przepęknięciach;* przy *nabrzmieniach nastąpionych od ukłucia owadów;* przy *dawnych uszkodzeniach, ropiejących się ranach; wrzodach rakowatych, otwartych nogach; zapaleniach skórki kostnéj itp.*

Użycie jest całkiem pojedyńcze; ta maść zostanie na miętką szmateczkę płócienną nasmarowaną i na chore miejsce przyłożoną. Odnowienie następuje według potrzeby w przeciągu 4-6-8-12 godzin.

Wszelkie zapalenia, puchliny, stwardnienia, nabrzmienia zostaną w najkrótszym czasie uleczone! gdzie ale już ropienie nastąpiło, *zostanie wrzód w najkrótszym czasie bez boleści za pomocą tego plastru nabierany i uleczony.*

Główny przymiot téj maści polega na tém, że ona szybki skutek i wyborną moc uzdrawiającą posiada, która się przez to pokazuje, że *rana prędzéj się nie zagoi, póki nie wszystkie chorobliwe materye wyciągnięte zostały.* Ta maść utrzymuje ranę świeżo i czysto, i zapobiega rośnięciu dziwego mięsa jako też i dostaniu gangreny; także uśmierza ta maść boleści przez jéj chłodzące działanie prawie zupełnie.

*Ropiące się i otwarte rany muszą zawsze przed przyłożeniem téj maści z letnią wodą być oczyszczone.* — **W puszkach po 25 i 35 ct.**

## Balsam słuchowy.

***Doświadczone*** i przez wielokrotne ***próby*** jako ***niezawodne lekarstwo*** uznane, do ***wyleczenia tępości słuchu*** i do ***otrzymania na powrót zupełnie postradanego słuchu.***

Przy regularném i nieprzerwaném użyciu skutek z pewnością nastąpi.

***1 flaszeczka 1 zł. w. a.***

Te lekarstwa można także w niżéj wymienionych miejscach nabyć.

---

## Prawdziwy Balsam życia dra Rosy

jest do nabycia tylko **w głównym składzie w Pradze, w aptece B. Fragnera,** Kleinseite, Eck der Spornergasse Nr. 205.

***W Cieszynie: Leopold Peter,*** aptekarz. **W Bielsku:** J. A. Stanko, aptekarz; Gust. Johanny. **W Frysztacie:** Józef Bayer, aptekarz i J. Oleownik i syn. **W Frydku:** Karol Sonntag, aptekarz. **W Klinkowicach:** K. Lubojatsky, aptekarz. **W Odrach:** Józef Tropper, aptekarz. **W Ostrawie Polskiéj:** Henryk Putze, aptekarz. **W Strumieniu:** Ludwik Różycki, aptekarz. **W Skoczowie:** Karol Olensky, aptekarz. **W Opawie:** Franc. Brunner, apt., Gustaw Hell, Engelap., Alfons Plachky, aptekarz. **W Wenclowicach:** St. Stach.

**Wszystkie apteki w Austryi, jakoteż handle materyalne i korzenne, posiadają skład wymienionego balsamu.**

**

*Dla wzmacniania i zachowania zdrowia i życia.*

*Ulżenie i wyleczenie wszystkich*

# Maryacelskie krople żołądkowe.

Wzmacnianie i zachowanie zdrowia jest pierwszą powinnością każdego człowieka. Podług doświadczenia pochodzi nader wiele cierpień z przeszkadzania funkcyj żołądka; a ponieważ żołądek właśnie ten organ jest, który przez swoją czynność, t. j. „trawienie," ciału dostarczone materye żywiące celowi odpowiednie przerabiać i chemicznie zmienić musi, aby przez krwi wszystkie owe materye, które przez czynność życia nieustannie spotrzebowane zostaną, wynagrodzić, więc jest niezbędnie potrzebno, nawet na najmniejsze nieregularności lub przeszkadzania w funkcyach żołądka pilną uwagę zwrócić, ażeby przez ich usunięcie uporczywszym chronicznym zachorowaniom żołądka i ich częstemu następstwu: ogólnéj chorowitości ciała, zapobiedz. Ponieważ „tylko w zdrowém ciele także i zdrowa dusza mieszka," a przez dłuższą chorowitość pewne choroby duszy, jak melancholia itp. powstają, więc prawdziwość wyżéj powiedzianego jasno się pokazuje i nie można dla tego pielęgnowania żołądka i usunięcie nawet mało znaczących uciążliwości tegoż dosyć zalecić. Jako najsposobniejszy środek do osięgnięcia tego celu polecają się te

**≡ słynne Maryacelskie krople żołądkowe. ≡**

Te już we wszystkich znanych krajach pomiędzy wszystkiemi klasami ludności ulubione krople są nieprzyszłoną medycyną ludową i powinne być w każdéj familii w każdym domostwie, osobliwie na wsi, gdzie niema lekarza ani aptekarza, ponieważ te krople z niespodzianie szybkim skutkiem: *brak apetytu, słabość żołądka, nadymanie, kwaśne odbijanie się, kolikę, kurcz żołądka, wszelkie kurcze* (zwłaszcza kobiet), *żgagę, ciśnienie w żołądku, zaflegmienie* (zwłaszcza ochotników do piwa), *ckliwość i zbieranie się na wymioty* (zwłaszcza ciężarnych kobiet), *katar żołądka, zatwardzenie i napieranie na stolec* jako też *nieregularność stolca, przeładowanie żołądka, żółtaczkę, cuchnący oddech, krwi bicie do głowy, nudzenia, zawrot głowy, mdłości*

*Ma się, jako szybka i pewna pomoc przy nagle przy*

*chorób żołądka i brzucha.*

*choroby na robaki, choroby śledzienne, wątrobne i hemoroidalne* (złotą żyłę) wyleczą. — Używa się te cudownie działające krople po jednéj małéj łyżeczce do kawy zrana, w południe i wieczór, (dzieci połowę), a jest cena tychże (35 ct. za flaszeczkę) tak nisko ustanowioną, że nawet ubogi jest w stanie przez użycie tego wybornego lekarstwa znowu ozdrowieć. Świadectwa od profesorów i doktorów jako też i listy podziękowalne wyleczonych i ozdrowiałych znajdują się *w centralnym składzie przesyłania:* ***K. Brady,*** *apteka pod „św. aniołem stróżem" w Kromierzyżu (Kremsier)* na sta do przejrzenia przygotowane.

Dla wygody publiczności założono wszędzie składy i można te słynne krople prawdziwie nabyć:

W **Opawie**: apt. F. Brunner; apt. G. Hell; apt. A. Plachky. W **Katharein**: apt. Kalassa. W **Cieszynie**: apt. L. Peter. W **Bielsku**: apt. G. Johanny; apt. J. A. Stanko; apt. G. Zabystrzan. W **Białéj**: apt. Reicherta dziedziców. W **Bochni**: A. F. Pilla. W **Frysztacie**: apt. Bayer. W **Freiwaldau**: apt. F. Hoffmann. W **Freudenthal**: apt. A. Ortmann. W **Frydku**: apt. K. Sonntag. W **Hennersdorf**: apt. E. Kratschmer. W **Jabłonkowie**: apt. L. Graff. W **Karniowie**: apt. V. Spatzier. W **Jauernig**: apt. J. Hettmer. W **Johannesberg**: Goth. Tinter. W **Karwinéj**: Zygmunt Fasal. W **Klinkowicach**: apt. K. Lubojatsky. W **Boguminie**: apt. P. Wojnar. W **Odrach**: apt. Józ. Tropper. W **Olbersdorf**: apt. Józ. Dreyer. W **Ostrawie Polskiéj**: apt. H. Putze. W **Strumieniu**: apt. L. Różycki. W **Skoczowie**: apt. K. Olensky. W **Ustroniu**: apt. T. Kadiera. W **Wagstadt**: apt. Eisenberg. W **Weidenau**: apt. Paweł Tropper. W **Wigstadtl**: apt. J. Klimiček. W **Wenclowicach**: Stan. Stach. W **Würbenthal**: apt. Leon Weber. W **Zuckmantel**: apt. Ant. Jonas, jako też i we wszystkich aptekach i handlach materyalnych monarchii.

*Przestroga!* Ponieważ w ostatnim czasie nasz produkt naśladowany i fałszowany zostaje, upraszamy, tenże tylko z jednego wyżéj wzmiankowanych składów nabywać, najgłówniéj jednak na następujące znaki prawdziwości uważać: Na szkle muszą być te słowa: „**Prawdziwe Maryacelskie krople żołądkowe — Brady & Dostal — aptekarze**" wycisnięte; flaszka musi być z naszą pieczęcią oryginalną zapieczętowana; na przepisie używania jako też i na, z obrazem najśw. Matki Boskiéj Maryacelskiéj opatrzoném zapakowaniu musi się wycisnienie naszéj sądownie złożonéj na depozyt ***marki ochronnéj*** obok obrazu znajdować, także zapakowanie musi być z naszą ***marką ochronną*** zamknięte. Wyroby podobnego albo równego imienia, które te znaki prawdziwości nie posiadają, mają być jako sfałszowania odrzucone, i upraszamy, nas o takich zdarzeniach, dla sądownego ukarania fałszerzów i sprzedawców, natychmiast zawiadomić.

*Od znacznych chemików i lekarzy zbadane i polecone.*

*padającéj słabości, w każdéj familii znajdować!*

Mattoniego

# Giesshübelski

najczystszy szczaw alkaliczny,

najlepiéj przez lekarzy polecony w chorobach *organów oddechowych, żołądkowych i pęcherza,* niemniéj jako *napój* w każdéj porze dnia.

Do nabycia we wszystkich aptekach, handlach wód mineralnych, kawiarniach, restauracyach i handlach winnych.

# Giesshübelskie pastylki,

lekarstwo na trawienie i piersi;

przeciw kwasom żołądkowym, żgagie, niestrawności i kaszlowi.

*Do nabycia we wszystkich aptekach i handlach wód mineralnych.*

Miejsce kuracyi

# Giesshübl-Puchstein

**przy Karlsbadzie.**

*Zakład do picia, kąpiele i leczenie się żętycą;*

**instytut leczenia się zimną wodą.**

Klimatyczne miejsce kuracyi. Wyśmienity pobyt latowy dla cierpiących na chorobę płuc i rekonwalescentów.

Bliższe objaśnienia udziela właściciel

***Henryk Mattoni, Karlsbad.***

# Hurtowy skład

# ŚLEDZI

i

# suchego stokfiszu

oraz wszelkich **ryb morskich** marynowanych i wędzonych, jako też wszelkie gatunki

## serów

krajowych i zagranicznych poleca hurtem i cząstkowo po cenach jak wiadomo przystępnych. Cenniki na żądanie franko się rozsyła.

Zwracam zarazem Szanownéj Publiczności uwagę na mój osobno urządzony **lokal piwa i postnych śniadań.**

# K. Szulc

**Poznań**, Wrocławska ulica Nr. 12.

Niechaj nam będzie dozwolono, uwagę

## P. T. gospodyń

zwrócić na wielkie oszczędzenie, które w spółgotowaniu przy kawie z prawdziwą dobrą *kawą figową* się okazuje. Dosięgnie się przy tém 2 korzyści: 1. ulepszą się smak i 2. spowoduje tanie nakupienie istotne oszczędzenie. Do tego celu upraszamy próbę uczynić z naszéj niesfałszowanéj

# *Kawy figowéj.*

**Sto złotych gwarancyi za prawdziwy, czysty towar.**

Ponieważ nasze zapakowanie (biały papier z drukiem złotym) fałszowane zostaje, zabezpiecza przed sfałszowaniem tylko firma i urzędownie zarejestrowana **marka ochronna.**

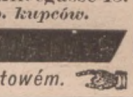


Wiktor Schmidt, Schmidt

## Wiktor Schmidt i synowie,

c. k. uprzywil. fabrykanci, Wiedeń, Wieden, Alleegasse 48.

*Składy u wszystkich znaczniejszych p. p. kupców.*

*Przesyłka także za pobraniem pocztowém.*

Składy mają: W Opawie p. p. Jan Eppich; w Cieszynie Edward Flooh, Karol Bernatzick i syn; w Würbenthal Jan Fitz i Józef Krischker; w Klantendorf Karol Staffe, i wdzielcie rzetelnym p. p. kupcom chętnie składy.

---

## Cukierki na piersi z babki zaostrzonéj

(Spitzwegerich-Brust-Bonbons)

do wyleczenia *chorób płuc i piersi, kaszlu, kokluszu, chrypki i zaflegmień tchawicowych.*

Ta nieoszacowana roślina, którą przyroda dla dobra i zdrowia cierpiącéj ludzkości rodzi, zawiera w sobie ten po dziś dzień niewyjaśniony sekret, zapalonéj błoni śluzowéj krtani i systemu tchawicowemu równie prędko jak skutecznie ulgę nadać i przez to wyleczenie zachorowanych organów możebnie przyśpieszyć. Ponieważ my przy naszym fabrykacie za czyste mieszanie *cukru i babki zaostrzonéj* gwarantujemy, upraszamy osobliwie uważać na naszą urzędownie zarejestrowaną *markę ochronną i podpis* na kartonie, ponieważ tylko to prawdziwe jest.

Wiktor Schmidt, Schmidt

## Wiktor Schmidt i synowie,

c. k. uprzywil. fabrykanci, Wiedeń, Wieden, Alleegasse 48.

Do nabycia u p. p. aptekarzy: G. Hell, A. Plachky i Franc. Brunner w Opawie; Leopold Peter w Cieszynie; A. Ortmann w Freudenthal; G. Zabystrzan w Bielsku.

## Wielkie zdarzenie!!

# ANTIEPILEPTICUM

środek urzędownie zbadany a zalecony przez powagi lekarskie jako pewny i radykalny przeciw najstraszniejszéj z chorób: **Epilepsyi** (**wielką chorobą zwanéj**), jako też przeciw każdéj **chorobie nerwów.** Środek ten jest nader ważny dla wszystkich tego rodzaju chorych, a tysiące już osób jemu zawdzięczają wyzdrowienie, co jest rzeczą niezaprzeczoną i uznaną przez wszystkie prawie dzienniki krajowe i zagraniczne.

Rozsyła się w opakowaniu po 6 flakoników z dołączeniem instrukcyi co do używania, za nadesłaniem 25 franków. Skutek poręcza się. — Jedynie w przypadkach wyjątkowych potrzebną jest podwójna doza.

Obstalunki i polecenia przesyłek adresować należy do głównego składu:

**C. F. Kirchner,**

**BERLIN, S. W. Jerusalemer Strasse Nr. 9.**

# Grające przedmioty,

grające 4—200 sztuczek,
zawierające lub nie zawierające ekspressyi, mandolinę, bębenek, dzwonki, kastaniety, głosy niebiańskie, grę harfy itd.

# Grające tabakierki,

grające 2—16 sztuczek;
daléj pudełka, stawidła do cygar, domki szwajcarskie, albumy do fotografii, szkatułki pisarskie, puzderka do rękawiczek, przygniatacze listów, wazy do kwiatów, cygarniczki, tabakierki, stoliki do pracy, butelki, szklanki do piwa, portmonetki, krzesła itd., wszystko z muzyką. Zawsze co najnowszego poleca

## J. H. Heller, Bern.

Ilustrowane cenniki wysyłam franko. Tylko kto **wprost** zapisuje, odbiera **Heller'a** wyroby. — Fabryka w własnym domu.

Pierwszy w kraju specyalny

# główny skład nasion

## Teofila Łuckiego we Lwowie,

plac halicki l. 15, w gmachu banku hypotecznego,

powiększony został i najobficiéj zaopatrzony w zupełnie

***świeże nasiona***

wszelkiego rodzaju, pewnych szlachetnych i najpiękniejszych rodzaji **jarzyn i kwiatów, roślin pastewnych, traw koniczyn, drzew szpilkowych, liściastych i krzewów.**

Lucernę francuzką oryginalną, buraki pastewne, olbrzymie najnowsze, turnips szkocki i rzepę ścierniskową.

---

**Róże szczepione, drzewka owocowe i krzewy, szparagi olbrzymie, truskawki i poziomki** i wszelkie **flance jarzyn i kwiatów** w stosownéj porze, **haarlemskie cebulki kwiatowe oryginalne, hyacynty, tulipany, tacety, lilie** etc. etc.

***Narzędzia ogrodnicze, maść do szczepienia, łyko indyjskie, atrament*** Dra Graefa, ***tabliczki i paliki, ziemia do kwiatów, worki zbożowe i inne.***

Cenniki odseła na żądanie franko.

Do każdego zamówienia nasion jarzyn za złr. 5 lub nasion kwiatów za złr. 3 dodaje odpowiednie dziełka o uprawie tychże. zamówienia niżéj powyższych sum otrzymują dziełka te za połowę ceny, czyli 25 ct.

## Bukiety balowe, ślubne i wieńce myrtowe modne

z świeżych kwiatów najgustowniéj układane,

## ordery kotylionowe i bukieciki

w wielkim wyborze.

---

Utrzymuje też wyroby z dóbr Alf. hr. Potockiego, mianowicie:

**sukna bronzowe na bundy i kurtki, bundy gotowe, bóty sukienne do podróży i do polowania, koce i sukna podłogowe, Sławuckie kołdry prawdziwe,**

***pasy skórzane*** do maszyn i młócarń w różnych szerokościach, tudzież silne konopne czyli parcianne.

***Oléj do maszyn, smarowidło do osi.***

# *Lekarstwa dla zwierząt*

## Franciszka J. Kwizdy, aptekarza w Korneuburgu,

od urzędu wielkiego ochmistrzostwa nadwornego Jego Cesarskiéj i Królewskiéj Mości c. k. liwerantem nadwornym dla preparatów weterynarskich mianowany.

Niektóre z tych lekarstw dla zwierząt zostały w masztalniach *JKMości królowéj angielskiéj i JKMości króla pruskiego, cesarza niemieckiego, jakoteż wielu wysokich osób z nadzwyczajnym skutkiem użyte,* i są medalami w Londynie, Paryżu, Wiedniu, Hamburgu i Monachium wyznaczone.

*C. k. konces. Korneuburgski proszek* dla koni, rogacizny i owiec; doświadczony po długoletnich próbach przy gruczołach, kolkach, braku ochoty do żarcia, krwodoju (dojeniu mleka z krwią), do ulepszenia mleka i ogólnie przy wszystkich chorobach narzędzi oddychania i trawienia.

*Płyn restytucyjny (Restitutions-Fluid) dla koni,* jedyny, który przez c. k. w. zwierzchność bezpieczeństwa zdrowia zbadany i przez JCMość Franciszka Józefa I. wyłącznym przywilejem odznaczony został. Do użytku przeciw zewnętrznym szkodliwościom, podagrze, reumatyzmie, wywichnięciu, nadwerężeniu, ochromieniu w krzyżach, karku, biódr i łopatek, słabości członków, sztywności cięciwa i muszkuł itd., 1 butelka 1 złr. 40 ct. — *Blister* (ostre nacieranie) przeciw włogaciźnie, martwéj kości, chorobie żółci i cięciwa, naroślom gąbkowatym na kolanach i chorobie kości w ogóle, zatwardziałym gruczołom i innym chorobom, cena 1 słoika 3 złr. — *Pigułki dla koni i rogacizny* przeciw kolkom, wzdęciu wietrznym, trudném oddawaniu uryny, wzdymaniu, nadętości brzucha od wiatrów i upartym zatwardzeniu, 1 puszka blaszana z 15 pigułkami 1 złr. 60 ct. — *Pigułki dla koni* przeciw glistom i chorobie na robaki w ogóle, poczwarkom (Oestruslarve), 1 puszka blaszana z 15 pigułkami 1 złr. 60 ct. — *Phisic,* pigułki na laksacyę dla koni, przeciw zatwardzeniu; krew czyszczący środek i lekarstwo zapobiegające kolkom. 1 puszka blaszana z 24 pigułkami, 2 złr. — *Maść* przeciw kruchemu kopytu i ku pośpieszeniu odrostu elastycznego i bez wady kopyta, 1 puszka 1 złr. 25 ct. — *Pigułki* przeciw psiéj chorobie, kurczom, podagrze, reumatyzmie i zatwardzeniu, 1 pudełko 1 złr. — *Oléj dla psów* przeciw parchom, liszajom i innym chorobom skórnym, 1 butelka 1 złr. 50 ct. — *Huile balsamique dla psów* przeciw wewnętrznéj szczypówce usznéj, 1 butelka 2 złr. 25 ct. — *Proszek dla drobiu* przeciw zarazie i zwyczajnym chorobom gęsi, kaczek, kur itd., 1 paczka 50 ct. — *Proszek dla świń* przeciw gangrenie i straceniu ochoty do żarcia, 1 wielka paczka 1 złr. 26 ct., 1 mała paczka 63 ct. — *Środek dla owiec* przeciw biegunce jagniąt i chorobom na robaki, 1 mała paczka 35 ct. — *Proszek* przeciw psuciu pazurów i kopyt, chronicznym bolu racic, 1 butelka 70 ct.

**Prawdziwe wyroby weterynowe Kwizdy można nabyć:**

W Cieszynie w aptece Leop. Petera i u Karola Hollera; w Opawie u Butschka & Ponizila, Schwarza & Paikera, W. Karola Hirscha i synów; w Białéj u Józefa Knausa, Ericha Kéléra; w Bielsku w aptece J. A. Stanko; w Bochni u Pawła Niedzielskiego; w Parubie u Em. Panzera; w Suchéj u S. Herzka; w Strumieniu u W. Langa; we Wigstadtlu u J. Pohla; w Krakowie w aptece M. Jawornickiego; we Lw. wie w aptekach Konstantego Iskierskiego, Piotra Mikolasza, Jakóba Beisera, S. Ruokera, Wład. Tepa i u J. Piepesa, St. Markiewicza.

*Główny skład u Fr. J. Kwizdy, c. k. liweranta w Korneuburgu.*

Znajdują się także składy prawie we wszystkich miastach i miasteczkach monarchii austr.-węg., które od czasu do czasu ogłoszone zostaną.

Ażeby tych artykułów z innymi tym podobnie nazwanemi nie zamieniono, zwraca się uwagę na to, że **prawdziwy Korneuburgski proszek dla bydła** nazwiskiem „**Fr. J. Kwizdy**“ na winietce czerwono drukowanéj opatrzoném jest; daléj, że **płyn restytucyjny (Restitutions-Fluid)** wyrobu **Fr. J. Kwizdy** jedyny jest, który wyłącznym przywilejem odznaczony został, i że każda butelka jakoteż i paczka opatrzona jest pieczęcią i firmą: „**Fr. J. Kwizdy w Korneuburgu.**“ Od fałszowania tych artykułów przestrzega się!

Kto mi fałszerza mojéj ochronnéj marki takim sposobem udowodni, iżbym takowego do sądownego ukarania podać mógł, *otrzyma nagrodę aż do wysokości 500 złr.*

***

**Czytelnicy tego kalendarza,** winni zwrócić uwagę na dziś nadzwyczaj i powszechnie wzięty, ogólnie zalecany domowy środek „**Płyn Expellera**“ zwany, *leczy Reumatyzmy i podagrę, Newralgji, cierpienia Muskułów, reumatyczne bole głowy i zębów, bole w krzyżu* itd. Środek ten, jak to już stwierdzone przez liczne, posiadane przez nas zaświadczenia, zyskał olbrzymie uznanie skutkiem swych zadziwiających leczniczych własności. W interesie więc publiczności musimy ostrzedz, że ten jedynie prawdziwy nasz

## *Płyn Expellera*

przed jedenastu laty przez nas wynaleziony, jest przez ludzi złéj woli, w opakowaniu zupełnie podobném do naszego, podrabiany.

W 120. wydaniu książki: *Dra Airy, metoda naturalnego leczenia**) zamieszczone podziękowania i opisy skuteczności naszego płynu, odnoszą się naturalnie tylko do prawdziwego *Płynu Expellera* i zawierają jeszcze lekarskie ostrzeżenia co do licznych podrobień tego cudownego prawie środka. Dla tego to każdy, w swym własnym interesie, powinien obejrzeć dobrze opakowanie i kupować tylko prawdziwy preparat, opatrzony znakiem fabryki.

Płyn Expellera znajduje się we wszystkich większych aptekach i kosztuje: cała flaszka 1 złr. 20 ct., ½ flaszki 70 ct. Flaszeczka na próbę: 40 ct. Żądać koniecznie tylko: **Płyn Expellera** (Pain-Expeller) z kotwicą z fabryki

***F. Ad. Richtera i spół.,*** *c. k. Nadwornych dostawców*

w Norymbergu, Rudolstacie, Wiedniu i Rotterdamie.

*) Za nadesłaniem 1 marki 20 fen. do nabycia przez **księgarnię nakładową Richtera w Lipsku.** Prospekt **bezpłatnie i franko.**

---

# Zmiana pomieszkania.

## Skład obuwia

# Steinera w Cieszynie

znajduje się obecnie

**w Głębokiéj ulicy Nr. 207, naprzeciw kupca Flooha.**

Zamówienia zamiejscowe są szybko, starannie i tanio wykonywane. Wysyłka próbek na żądanie.

Szczególniéj zaś poleca P. T. publiczności swój wielki wybór **bócików dziecinnych, damskich i męzkich** wszelkiego gatunku i kroju — *po cenach przystępnych.*

# Towarzystwo
# oszczędności i zaliczek
## w Cieszynie,

stowarzyszenie zarejestrowane z nieograniczoną poręką.

**(W domu „pod złotym wołem“ na I. piętrze.)**

---

## *Daje Pożyczki*

tym, którzy do niego przystąpią, pod dogodnymi warunkami i na umiarkowany procent, bez hipotekowania na gruntach lub realnościach.

*Pożyczki, zaciągnięte w Towarzystwie, mogą być także w ratach spłacane.*

## Przyjmuje wkładki na oszczędność

czyli na procent i płaci od nich **6 od sta** na rok, licząc **od dnia po złożeniu do dnia przed wyjęciem wkładki.** Najmniejsza wkładka, którą się przyjmuje, jest 20 centów wal. austr.

Co pół roku tj. dnia 30. czerwca i 31. grudnia każdego roku przypisuje się nieodebrany gotówką procent do kapitału, a w następném półroczu już od całéj téj sumy liczy się procent.

Wkładki na oszczędność mogą być **każdego czasu** z kasy Towarzystwa za stosowném wypowiedzeniem wyjęte.

Godziny urzędowe: codzień od godziny 9—12 przedpołudniem i od godziny 2—4 popołudniu, z wyjątkiem świąt i niedziel.

**Dyrekcya.**

# M. DEUTSCH

w Cieszynie, przy ulicy farnéj, l. 195,

(naprzeciw kościoła farnego).

---

**Skład sukna i towarów wełnianych.**

Największy wybór wszelkiego gatunku

***sukien, tyfliku i różnych sztofów***

z prawdziwéj wełny i w dobréj barwie

po zdumiewająco tanich cenach.

---

# *Eugenjusz M. Haas,*

***skład srebrnych i złotych wyrobów***

***w Cieszynie,*** *przy ulicy kościelnéj.*

*Poleca swój bogaty* ***wybór srebrnych i złotych towarów*** *w najnowszym stylu i po najprzystępniejszych cenach. Główn zaś zwraca uwagę na piękny zbiór spinek i guzików do koszu sukien, kaftanów; także broszek, kolczyków, pierścionków, nara mienników, łańcuszków do zegarków i na szyję.*

***Wszelkie reparacye wykonywa szybko i sumiennie.***

---

# Dr. Juliusz Sokal,

Adwokat krajowy i tłumacz sądowy języka polskiego

**w Cieszynie**

(Rynek „pod Jeleniem“).

# *A. FRISA,*

## handel sukna w Cieszynie,

ulica głęboka, l. 15,

poleca w każdą porę swój obfity *skład sukna, tyfliku, peruwianu, doskingu, palmerstonu,* tudzież wielki wybór *sukien na surduty i spodnie* z Berna i Reichenberga, *styryjskie łody, watowniki, flanele* itd. — Przy korzystném zakupnie za gotówkę jestem w stanie, służyć Sz. Publiczności towarem doborowym i po najtańszych cenach.

# GOTLIEB SPIEGEL

w Cieszynie, na przykopie pod l. 10,

poleca swój obfity

**skład sukna i tyfliku własnego wyrobu,**

oraz znaczny zapas modnych materyj z Berna, Reichenberga, Jägerndorfu po najtańszych cenach. — Tamże nabyć można białą i kolorową **bawełnę** do pończoch. — **Wata z wełny owczéj i nici wełniane** zawsze na składzie.

# Edward Tilger,

zegarmistrz w Cieszynie,

w domu pana Bilowickiego, szklarza,

poleca swój wielki skład zegarów w wszelkich gatunkach

kieszonkowych, ściennych

## i stołowych zegarów

*po najtańszych cenach.*

**Poprawy zegarów wykonane będą najsumienniéj.**

**Najlepsza rzecz pod słońcem!**

# Płyn żołądkowy Mississippi

Preparat ten składający się tylko z koniaku i wyciągów z najlepszych leczniczych i wzmacniających żołądek ziół amerykańskich, ma smak przewyborny i będąc powszechnie używany, działa bardzo zbawiennie na żołądek, pomaga trawieniu, uśmierza boleści i kurcze, przeszkadza tworzeniu się kwasów, osłabia katary i t. d.

Jest on zaś do nabycia tylko w składzie

**Zygmunta Bergera,**

destylatora i właściciela fabryki rumów, likierów i spirytusów *w Cieszynie.*

# Franciszek Just,

**sitarz i fabrykant wyrobów drucianych**

**w Cieszynie,**

przy ulicy „Źródła trzech braci" Nr. 26.

Poleca ***sita*** wszelkiego rodzaju, ***przesiewaczki*** dla rolników, ***wiejniki, koszyki*** rozmaite, jako też mocne i prędkie wykonanie wszelkich robót w zakres jego zakładu wchodzących i po nader przystępnych cenach.

**Przyjmuje reparacye.**

# Ferdynand Fixek,

w Cieszynie (główny rynek),

poleca jaknajtaniéj następujące towary:

Kartuny na szaty,

*batysty na fartuchy, kwiaty i wstążki, sukna,*

materye płócienne i bawełniane,

skórkowe sukna, perkale, materye na ubiory,

**firanki, kobierce itd.**

po zadziwiająco tanich cenach.

# M. Fasal w Cieszynie

*na Saskiéj kępie.*

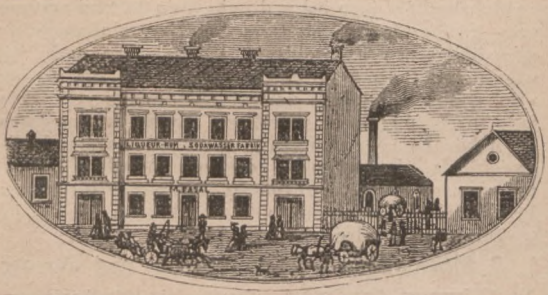


*na Saskiéj kępie.*

## Fabryka likierów, rumu i sodowéj wody.

# Podagrę i Reumatyzmy

*sprowadzające pokrzywienia i inne zewnętrzne i wewnętrzne cierpienia do dziś uważane za nieuleczalne.*

Chorym, którzy dawno już się zrzekli wszelkiéj nadziei wyleczenia, i którzy dawno już żadnych środków nieużywają, aby ratować swe cenne zdrowie — zostaje przecież jeszcze jeden ***niezawodny środek,*** choćby cierpienia i porażenie ogarnęły, i to od lat wielu, całe nawet ciało.

Przedstawiającego środek, zwany ***Moessingerski*** — kosztowało niezmiernie wiele trudu, za pomocą swéj ***nowéj leczniczéj metody,*** narywy i nabrzmienia, zupełnie stwardniałe, zupełnie rozpędzić, skutkiem czego skrzywione członki ***znów do dawnego wróciły stanu*** a krew do prawidłowego krążenia.

Najuporniejsze i najzastarzalsze katary i rwania w głowie łagodzi w jednéj minucie, a usuwa zupełnie do 3 dni najdaléj.

Tylko nietrzeba łączyć tego środka z innymi, wybadkowo wynalezionymi, których używają szarlatani, które już wielu chorym otworzyły oczy ale, niestety — zapóźno!

Najlepszy zaś dowód, że mój środek leczy tam nawet, gdzie już żadnéj niema nadziei, jest ten: że każdy, skutków jego już w drugim dniu leczenia doznać musi koniecznie i to niebacząc czy jest słabszego czy też silniejszego usposobienia. Środek ten może być używany tak przez starców jak i dzieci a kto się doń ucieka, choćby pierwéj używał najrozmaitszych leków jako to: potów, tranu, petroleum, kąpieli, merkuryuszu, lub nabawił się cierpień skutkiem wilgotnego mieszkania, zaziębienia, niestrawności, rozstroju nerwów i t. d. — ten przezemnie ***z pewnością będzie wyleczony.*** Proszę tylko o dokładne opisanie cierpień i czasu ich trwania oraz o adres dokładny.

**L. G. Moessinger we Frankfurcie nad Menem.**

**Uwaga.** (Przed rozpoczęciem leczenia, które bardzo małe wydatki pociąga za sobą — mogę przedłożyć **podziękowania**, które w ogromnéj liczbie i ciągle mi są nadsyłane, a których wierzytelność każdy z łatwością sprawdzić może).

# J. Pserhofera

k. p.

# „Krew czyszczące pigułki“,

## dawniéj „Uniwersalne pigułki“ zwane.

1. Ogrzewają one żołądek i oziębioną krew, odprowadzając kwasy, flegmę i zbyteczną żółć w żołądku bardzo delikatnym sposobem przez ciało; dają więc tym sposobem podstawę do wytwarzania całkiem nowéj i polepszonéj krwi, ponieważ jedynie z żołądka, jeżeli ten tylko raz nie jest w stanie spełniać swéj czynności przy trawieniu potraw, wszelakie niemoce i wady ciała powstają;

2. te krew czyszczące pigułki stawiają żołądek w możności nietylko napowrót należycie czynności spełniać, lecz podniecają także

3. na nowo utraconą chęć do jedzenia i picia;

4. rozpędzają one wzdymania, z których ból krzyżów, nudności w żołądku i piersi, ściąganie, bole brzucha i zatkanie tegoż, odbijanie się z żołądka, gorzkość i zaflegmienie w ustach, ckliwość, zbieranie się na wymioty, ociężałość i darcie członków, ból głowy, zawrót głowy, zasępienie umysłu, kłócie w boku i inne jeszcze słabości wynikają. Również stwierdzają one

5. swą znakomitą siłę w złotéj żyle, jeżeli ta już była w płynnym stanie i zatkała się, albo też jeszcze zupełnie do rzeczonego stanu nie doszła, a pokazują się tylko nabrzmienia w pośladku, albo tak zwana ślepa złota żyła, w bolu, darciu w krzyżach, świerżbieniu i gryzieniu w pośladku, bolu głowy, nudnościach, zawrocie głowy, melancholii, itp.; w podobnych razach trzeba brać przez kilka dni z rzędu zrana i na noc 1, 2 do 3 sztuk, a z pewnością odpowiedzą one życzeniu i żądaniu każdego. — Niemniéj okazują się

6. zbawiennie działające w hypochondryi, chorobie śledziony, melancholii, zapobiegając przytém wyradzającym się z tych chorób skutkom i przyczynom, powód do nich dawać mogącym; ponieważ czyszczą one zatkane wnętrzności, jak śledzionę, wątrobę i drobne trzewa w sposób podziwienia godny, choroby te więc tém samém radykalnie usuwają.

7. Leczą one pewnie cieczenie z głowy i reumatyzmy, jak: katary, bole głowy, zębów i uszu, zły słuch, jeżeli tenże z humorow lub przeszkody w obiegu krwi pochodzi, leczą również ciekące, załzawione, smutne, niedołężne i czerwone oczy; gdyby nawet już błonka ponad okiem była, albo nawet bielmo zare się sformowało, to można takowe przez współdziałanie zewnętrznych środków na oczy pewno i na zawsze rozpędzić; tylko trzeba poddać się kuracyi emiż przez kilka tygodni, biorąc codziennie 1, 2 do 3 sztuk. Również można pewno na to liczyć, że zdoła się niemi

8. wszystkie ostre wyciekania, wyrzuty skórne, t. z. węgry na twarzy, krosty, wysypki, reumatyzmom podlegające i strupiaste głowy, dziedziczne wrzody, liszaje, suche bolączki, dymienice, wrzodzienice, zanokcice i wszelkie podobnego rodzaju choroby i nieczystości, które się z zepsutych soków wywięzują, bodajby nawet zastarzałe i zakorzenione, jak to zwykle bywa, z użyciem służących do tego zewnętrznych, suszących, czyszczących i gojących środków, niezawodnie na zawsze wygubić i wyleczyć, a nie potrzeba się zupełnie obawiać, aby używając zaleconych zewnętrznych środków, jakie niebezpieczeństwo groziło z przyczyny przejścia jadu na wewnątrz, pigułki te bowiem muszą go z ciała częścią przez odprowadzanie, częścią przez powolne wzbudzanie parowań skóry uprzątnąć, co z zewnątrz nie dałoby się uczynić. Niemniéj okazują się one

9. jako specyficzny środek we wszystkich chorobach, które weneryczne choroby w następstwie sprowadzają, jak: upławach szlamowych, wenerycznych, bolakach, nabrzmieniach i wszystkich tym podobnych chorobach. Ba! nawet gdy już francuska choroba tak dalece zakorzeniona, że się na szyi, na wargach, na nosie, albo gdzie to tylko możebne, w rodzaju gryzącego raka pojawia, można liczyć na pewno na niezawodny skutek tych pigułek.

10. Posiadają one także pewną i nigdy nie zawodzącą siłę na robaki. Trzeba tylko uważać przytém, aby na noc żadnych pigułek nie zażywać, tylko cokolwiek pożywić się trzeba; za to rano na czczo, stosownie do wieku i jakości ciała, bierze się naraz 4, 6 do 8 sztuk, i nie pożywa się nic przed południem, prócz szklanki czarnéj herbaty, a jeżeli się chce cały zarodek zniszczyć, to postępuje się w taki sposób kilka dni bez przerwy.

11. Dowiodły ich skuteczności świetne i nigdy nie zawodzące próby w żółtaczce; gdzie mianowicie położenie i jakość ciała pozwalają, bierze się na każdą noc i rano zawsze po 1, 2 do 3 pigułek, a ozdrowienie na czwarty lub piąty dzień nastąpi niezawodnie.

12. Niezamężne i zamężne kobiety przy nieregularném lub całkiem opóźniającém się czyszczeniu miesięczném, przy białych upławach; w bladaczce itp., jakoteż dziewczęta, u których należne przypadłości nie rozwijają się, a które wiek po temu mają; niemniéj kobiety, u których natura ma się zmienić, a które w tym czasie na wiele nieprzyjemności, a często na najniebezpieczniejsze choroby są narażone; używać ich mogą z pewnym, niezawodnym skutkiem, pierwsze według jakości i stosownych okoliczności przez 1, 2, 3 tygodnie, a drugie tylko od czasu do czasu przez kilka dni. Również ciężarne kobiety mogą być zapewnione, że nietylko zdrowy i wolny od wszelkich uciążliwości czas ciąży mieć będą, lecz także spodziewać się szczęśliwego, a lekkiego rozwiązania, i następujących później zdrowych tygodni, jakoteż że ich płód ciała zdrowy będzie, a w takim celu używać powinny tych pigułek w czasie ciąży przez 4 do 6 tygodni co kilka dni rano i na noc, każdą razą 1 do 2 sztuk.

13. Udzielają one prawie jawnéj, szybkiéj pomocy tym, którzy cierpią parcie jakiegokolwiek rodzaju, kurcze żołądka, wymioty częste, uchodzenie krwi

nosa, plucie krwią, rzeżączkę, dolegliwości maciczne, darcie wnętrzności, niemniéj dzieciom cierpiącym darcie mózgu, darcie wnętrzności, inne darcia, na robaki sercowe itp., jakoteż tym, które zdaje się być rozrośnięte. Prawdziwe próby dowiodły już cudownéj prawie skuteczności tych pigułek w tak zwanéj wielkiéj chorobie (epilepsyi) przy ciągłem ich używaniu. Również mogą

14. cierpiący na puchlinę wietrzną i wodną, jeżeli używają tych pigułek, liczyć na pewne wyzdrowienie; tylko ci ostatni muszą brać większe dawki na noc i rano.

15. Wyświadczają one największe przysługi tym, którzy cierpią bole członków, kurcze członków, łupanie członków i zwykłe darcia; łagodzą i uspokajają bole i nabrzmienia przy podagrze i wyprowadzają materyę, dającą do nich przyczynę, bardzo łagodnym sposobem.

16. Mają się lepiéj na zdrowiu, oczywiście używając tych pigułek ci, których trapi węgierska choroba, robaki, zatkanie kiszek itp. a więc z przyczyny ich mają grube brzuchy, smutny wzrok, sztywne członki, a nawet wzrost często dlatego u nich karłowaty.

17. Leczą one także skorbut na dziąsłach, ochraniają zęby od psucia się i usuwają nieprzyjemny zapach z ust.

18. Czyszczą zaflegmione nerki, odprowadzają piasek i żwir przez urynę, gdzie odchód uryny wstrzymany jest, albo kamienie i żwir głęboko leżą, a ztąd przez wielkie rozgrzanie lub oziębienie powstaje kurczowe ściąganie pęcherza, wyświadczają one znakomitą i szybką pomoc.

19. Można sobie także rychłą obiecywać pomoc w chorobach szyi, nabrzmieniu migdałów, jakoteż przy zewnętrznem napęcznieniu szyi i naroślach, jeżeli się rano i na noc 1 do 2 sztuk bierze, a przytém trzeba w potrzebnym wypadku płukać gardło wodą, z domieszaniem cokolwiek winnego octu i miodu. Także dają one

20. w naroślach na członkach (dziwe mięso) wielkie pożytki i leczą je radykalnie przy ustawiczném używaniu.

21. Są one pewnym i niezawodnym środkiem zachowawczym we wszystkich grasujących zarazach i chorobach, jeżeli się ich kilka sztuk podczas tego czasu parę razy tygodniowo przed udaniem się na spoczynek używa. Jeżeli ktoś czuje się bliskim ospy, (krosty), czerwonych plam, szkarłatyny lub jakiejś innéj z liczby tych chorób, to takowe przejdą lekko i szczęśliwie, jeżeli się do nich przygotuje mierném użyciem tych pigułek przez 2 do 3 dni; a jak tylko owe wyrzuty po przebytéj chorobie znów goić się poczynają, to rozpoczyna się używanie tych pigułek na nowo; i można z pewnością wierzyć, że o złe skutki, które podobne choroby pozostawiają częstokroć na oczach, słuchu, członkach itp. zupełnie troszczyć się nie trzeba; tenżesam skutek sprawiają one po wszystkich przebytych chorobach, bo odprowadzając wszystkie pozostałe jeszcze jady, czyszczą krew w sposób prawie zadziwiający, i czynią człowieka temsamém prawie nowonarodzonym.

22. Leczą one najobrzydliwsze z pomiędzy wszystkich chorób, mianowicie gwałtowne zatwardzenie (t. z. miserere, w których odchody dolne ustami

wychodzą), jeżeli już wreszcie zaszło tak daleko z tą chorobą, że kilkodniowe zatkanie stolca, silne cierpienia ciała, ustawiczne wymioty itp. trwają, a tém samém chory znajduje się w największém niebezpieczeństwie, to nie stosuje się, jak i przy kolkach i innych tym podobnych chorobach, które szybkiéj pomocy wymagają, całkiem do czasu, lecz daje się choremu co pół godziny z przestankiem 2 do 3 godzin pigułkę i trwa to tak długo, dopóki natura znowu nie utoruje sobie zwyczajnéj drogi; późniéj można jeszcze dawki przez kilka dni przeciągnąć, biorąc rano i na noc 1 do 2 sztuk. Osoby w najpóźniejszym wieku za pomocą Boską i przez użycie tych zbawiennych pigułek, powstały z obrzydliwéj choroby w przeciągu kilku dni, nie używając przedtém ani enem, ani zewnętrznych kataplazmów, lub innych jakichkolwiek środków.

23. Osoby, które kuracyi kąpielnéj i źródłowéj używać zamierzają, nie mogą żadnego lepszego środka przygotowawczego i czyszczącego nad nie używać, jeżeli tylko przed rozpoczęciem kuracyi przez kilka dni z rzędu na noc i rano, każdym razem 1, 2 do 3 sztuk tych pigułek zażywają.

24. Słowem, że ilość wypadków, w których pigułki te okazały swoją podziwienia godną siłę na korzyść cierpiących w wielorakich chorobach, jest za wielką, aby je w niniejszém wyszczególnieniu objąć można. Można być tylko najzupełniéj pewnym, że ich nikt, gdyby się jakakolwiek sposobność nadarzyła, bez skutku używać nie będzie.

## Dozy tych pigułek są następujące:

Dorośli biorą rano i na noc każdorazowo 1, 2 do 3 sztuk. Krwiste i gorące natury, które pospolicie trudno poruszyć, i którym często najsilniejsze czyszczenie nic pomódz nie może, uczynią lepiéj, jeźli ich mało, mianowicie rano i na noc każdorazowo 1 do 2 sztuk, ale przez kilka dni z rzędu używają, przeciwnie miękkie i flegmatyczne usposobienia mogą znieść więcéj. Także ci, którzy z powodu okoliczności potrzebują całą kuracyę niemi 2, 3 do 4 tygodni przeciągnąć, biorą na noc i rano nie więcéj, jak 1, 2 do 3 sztuk i jeżeli w ten sposób przez 8 dni postępują, to już późniéj wystarcza, jeżeli tygodniowo tylko 3 razy takowych używają i tak postępują 3, 4 do 6 tygodni, aby tylko 2, 3, najwięcéj 4 razy doprowadzały do skutku, reszta działania tych pigułek przechodzi na krew, którą we wszystkich jéj składnikach najdokładniéj czyści; ci zaś, którzy chcą, aby ich tylko kilka dni czyściły, a późniéj już zdrowi byli, powinni wziąć na noc przed udaniem się na spoczynek 4 do 5 sztuk, a gdyby na rano nie dosyć działały, to można jeszcze powtórnie rano kilka użyć.

Pigułki te działają nadto w tak delikatny sposób, że nawet najczulszym naturom w najmniejszym względzie nie dolegają, i nie sprawiają ani obmierżenia, ani wymiotów, ani jakichbądź bolów ciała.

Sposób połykania tych pigułek jest każdemu zostawiony do woli, pożywa się je jednak najlepiéj w łyżce kleiku lub rosołu, tylko uważać potrzeba,

że to, z czém się je połyka, całkiem zimne być musi, w przeciwnym bowiem razie pigułki rozpuszczają się prędko i przytém nieprzyjemnie smakują. A często nie chce ktoś psuć sobie porządku w jedzeniu i piciu, pigułki więc mają jeszcze tę wielką zaletę, że przy nich można sobie owocu i wszystkiego pozwalać bez obawy, by działaniu ich przeszkadzały. Nie potrzeba także nawet kwadransa postu przy używaniu tych pigułek, lecz jé się wieczorem zwykłą kolacyę, postąpiwszy sobie podobnie bezpośrednio ze śniadaniem, i można ich albo przed, lub po kawie i zwyczajném śniadaniu używać. Ci, którzy całe leczenie niemi uskuteczniają, będą najlepiéj wiedzieć, co i ile bez szkody dla zdrowia znieść mogą i ze względu na usposobienie własne, ile sobie pozwolić mogą; bo co się tyczy pigułek, jak już powiedziano, wszystko przy nich, byle w miarę pożywać można. Jednak, jak przy używaniu każdego lekarstwa lepiéj jest, jeżeli się w jedzeniu cokolwiek ogranicza, tak samo przy używaniu pigułek niejaki porządek w jedzeniu i piciu więcéj pożytku niż szkody przynosi, a jeżeli się do tego stosownie do pory roku w odzienie należycie zaopatrzy, to można zajmować się zwykłemi czynnościami w domu i na polu, podróżować dokąd się podoba i pigułek w każdéj godzinie i na drodze nawet używać. Jeszcze jedna wielka korzyść, którą te szczególne pigułki mają, mianowicie: że całkiem skuteczną siłę zatrzymują, chociażby 10, 20 lat przechowane były.

Te *k. p. „Krew czyszczące pigułki“ jedynie dobre i prawdziwe* można nabyć od *lat przeszło 80 w aptéce J. Pserhofera „pod Złotém jabłkiem cesarskim“* (zum goldenen Reichsapfel), *Singerstrasse Nr. 15 w Wiedniu, a jedno pudełeczko zawierające 15 sztuk pigułek kosztuje 21 cnt. w. a. Paczka zaś z sześcioma pudełkami kosztuje 1 zł. 5 cnt.,* przy przesyłkach pocztowych dodaje się 10 cnt. na opakowanie i stempel. Mniéj niż jednéj paczki nie posyła się.

*NB. Z powodu wielkiéj wziętości, pigułki te w najróżnorodniejszych kształtach i pod rozmaitemi nazwami naśladowane bywają, uprasza się zatém kupujących żądać wyraźnie „J. Pserhofera k. p. krew czyszczących pigułek“ i te tylko uważać za niesfałszowane, których przepis używania własnoręcznym podpisem: „J. Pserhofer“ zaopatrzonym będzie.*

Fiume, 19. kwietnia 1875.

Panie Pserhofer w Wiedniu! Chciéj Pan łaskawie za pobraniem pocztowém przysłać mi znów 5 paczek Pańskich znakomitych „Krew czyszczących

pigułek." Równocześnie muszę przytém wyrazić najzupełniejsze uznanie z powodu znakomitéj wartości tych pigułek i będę takowe, ilekroć nadarzy się sposobność, cierpiącéj ludzkości najgoręcéj polecał. Z tego mojego podziękowania pozwalam Panu niniejszém jakikolwiek publiczny użytek zrobić.

Z nadzwyczajném poważaniem

**Krunoslav Jovic,**
urzędnik k. węgierskich kolei żelaznych w Fiume.

Peterswald, 14. sierpnia 1870.

Wielmożny Panie! Przepełniony wdzięcznością poważam się donieść, że Pańskie pigułki w przeciągu 5 tygodni wyleczyły mię z zastarzałych bolów w brzuchu tak doskonale, iż znów moją służbą zajmować się mogę. Zasyłam więc Panu moje z serca płynące podziękowanie w nadziei, że tém dopomogę do rozszerzenia tego znakomitego środka dla cierpiącéj w podobny sposób ludzkości.

**Antoni Schebella,**
leśniczy rewirowy.

Bukovar, 13. sierpnia 1869.

Wielmożny Panie! Miałem to szczęście dostać przypadkiem Pańskich „Krew czyszczących pigułek", które dla mnie prawie cuda zdziałały. Cierpiałem przez kilka lat na żołądek, gdy przyjaciel mój udzielił mi 10 pigułek i te 10 pigułek takie przywróciły mi zdrowie, że prawie do cudów liczyć się może. Dziękując, proszę znowu etc. etc.

**Franciszek Wagner,**
oberzysta.

Karbitz, 19. lipca 1871.

Wielmożny Panie! Pozwalam sobie przesłać moje podziękowanie i prośbę o przysłanie mi 2 paczek znakomitych „Krew czyszczących pigułek", za których zbawienne działanie nie mogę dosyć nadziękować się Panu, ponieważ one mię od sparaliżowania, zatwardzenia i cierpień hemoroidalnych bez dalszéj kuracyi całkiem uwolniły.

Z poważaniem

**J. Margraf.**

Dornau, 31. stycznia 1871.

Proszę o przysłanie mi znów pakietu Pańskich tak doskonale działających „Uniwersalnych pigułek", uznanych odemnie za prawdziwy na wszystkie choroby skuteczny środek.

Uniżony

**Józef Weiner,**
lekarz.

## Tysiąckrotne podziękowanie

za

## Tysiące złotych

które mi przyniosło wskazane przez sz. pana i wygrane

# TERNO.

I raz jeszcze: p. Dyrektorowi *von Orlicé,* profesorowi matematyki w *Berlinie* ul. kurfirsztowska 127 — powtarzam z wdzięcznością

*Tysiąckrotne podziękowanie.*

Brünn. *Franciszek Laschka.*

(Prawdziwość poręczona i notaryalnie poświadczona).

**Na Zapytania**

co do udzielania rad i sposobu grania na Loteryi, odpowiada natychmiast Dyrektor *R. von Orlicé,* literat i profesor matematyki (Berlin, Kurfürstenstrasse 127) bezpłatnie i opłaconymi listami.

# Adam Rabin w Cieszynie,

**ulica mennicza Nr. 150,**

## poleca swój magazyn wszelkiego gatunku mebli,

jako też wielki

## skład trumien

**po najtańszych cenach.**

Prace do budowli będą jak najrychléj i najtaniéj wygotowane.

**Zamówienia na inseraty**

do

## Kalendarza Polskiego na rok 1881

przyjmuje

nakładca *E. Feitzinger* w Cieszynie.

Książki nakładem

**E. Feitzingera w Cieszynie**

na wyższéj bramie Nr. 240 na I. piętrze.

---

Dla katolików:

# Wielki Kancyonał katolicki

i razem

## Książka modlitewna

pierwotnie ułożona przez

*śp. ks. Antoniego Janusza,*

plebana Zebrzydowskiego,

a teraz po czwarty raz wydana i pomnożona (1256 str.).

*W pięknych i trwałych oprawach,* a to w oprawie w półskórek z wyzłotą za *2* złr. *80* ct.; całkiem w skórce z kolorowemi brzegami za *3* złr.; z wyzłacanemi brzegami za *3* złr. *50* ct.; obficiéj wyzłacano lub w subtelniejszéj skórce z obiciem za *5* złr. i wyżéj; nieopr. za *1* złr. *60* ct.

---

## Kancyonał katolicki mniejszy

i razem książka modlitewna, wydana przez ks. Jana Żmijkę.

Cena: nieopr. 1 złr.

---

# Śpiewnik kościelny

i książka modlitewna dla młodzieży

razem

## Kancyonał katolicki.

W różnych pięknych oprawach po cenach: 50, 60, 75 ct., 1 złr., 1 złr. 25 ct. i t. d.

---

**Nabożeństwo do św. Alojzego.** 3 ark. Cena . . . . . 15 ct.
**Dodatek pierwszy i drugi do Kancyonału,** obejmując różne nowe pieśni. Cena jednego egz. . . . . 5 ct.
**Książeczka katolicka zabawna** (z ryciną ks.-biskupa Henryka Förstera). Cena . . . . . 8 ct.
**Obrazki św. Ojca Leona XIII.** 8°. 100 sztuk . . . . . 65 ct.

Książki nakładem

**E. Feitzingera w Cieszynie**

na wyższéj bramie Nr. 240 na I. piętrze.

## Dla ewangielików:

eczko Jerzy, ***Mały katechizm*** dra Marcina Lutra, w miarę potrzeby dokładniejszéj znajomości religii chrześciańskiéj uzupełniony. Wydanie drugie, opr. Cena . . . . . 50 ct.
***Pieśni pogrzebowe*** dla chrześcian ewangielickich, opr. Cena . . . . . 35 ct.
to Leop. ks., dr., pastor, ***Mniejszy katechizm*** dra Marcina Lutra. Czwarte wydanie. Tom I. opr. Cena . . . . 48 ct.
Tom II. (dla konfirmandów). opr. Cena . . . . . 35 ct.
iwka Jan, ***Historya biblijna*** dla początkowéj nauki dziatek. Wydanie piąte. 1877. 164 str. opr. Cena . . 45 ct.

## Książki szkolne, także dla szkół ludowych.

iwka Jan, ***Geografia*** czyli Opis ziemi dla uczącéj się młodzieży. Ułożona podług nowszych źródeł. Wydanie drugie poprawione i pomnożone. Cena . . . . . 55 ct.
***Książka do czytania*** dla wyższych oddziałów szkół ludowych. Z polecenia konferencyi nauczycieli ułożona. Wydanie drugie znacznie pomnożone. 1875. 8⁰. 356 str. opr. Cena 90 ct.
***Piosnki*** dla dziatek z melodyami. Wydanie trzecie. 1874. Z dwoma tablicami nót. 8⁰. 36 str. Cena . . . . 14 ct.

Główny skład:

**Ks. Samuela Dombrowskiego**

# KAZANIA.

**Wykłady porządne świętych ewangielij niedzielnych przez cały rok.**

óste wydanie, w pięknéj i trwałéj oprawie całkiem w skórce, z obiciem. Cena 4 złr. 80 ct. aż do 7 złr.

Daléj można nabyć:

**style ks. Grzegorza z Żarnowca,** po bardzo zniżonéj cenie. **Biblie** z apokryfami albo bez apokryfów. — **Zakony.** — **Rajski** ródeczek. — **Pieśni pogrzebowe i spowiednie, i różne inne** książki modlitewne i pobożne dla ewangielików.
*razy dra Marcina Lutra, Melanchtona, Calvina i Zwinglina* w przepysznym utworze.

**Główny skład papierów kancelaryjnych, konceptowych,**
**zarówno hurtowa i drobna sprzedaż papierów pocztowych, kolorowych,**
**papierów do pakowania, bibuł itd.**

# Henryk Feitzinger w Cieszynie

pod wielkiem podcieniem.

## Drukarnia

poleca się do wykonania wszelkich zamówień
**okólników, faktur, rachunków,**
***rewersów, blankietów wekslowych i asygnacyjnych,***
tabel, listów przesyłkowych,
**cenników, biletów wizytowych,**
kartek ślubnych, adresowych i pogrzebowych,
**plakat, dyplomów, dzieł, broszur, dzienników itd. itd.**

## Introligatornia

założona w roku 1835
wyrabia najpiękniejsze jakoteż i zwyczajne oprawy wszelkiego rodzaju.
***Wyrób książek rachunkowych i kupieckich, książek do notatek, kopiałów itp.***
stósownie do życzeń zamawiających.
**Z introligatornią połączony jest zarazem zakład do liniowania.**

**Przybory rysunkowe, malarskie i do pisania. Wielki skład książek szkolnych.**
***Książki do nabożeństwa. Kancyonały katolickie i ewangielickie.***
**Wielki wybór obrazów Świętych tak w ramach jakoteż i bez takowych.**

Książki nakładem

**E. Feitzingera w Cieszynie**

na wyższéj bramie Nr. 240 na I. piętrze.

---

**Loteryjka domowa.** dla zabaw urządzona, zawierająca w sobie 12 tablic numerowanych od 1 do 90, tak samo od 1 do 90 gałeczek, wraz z woreczkiem i 200 do 300 szkiełkami zaopatrzona, w gustownym pudełku, wydanie nowe. Cena . . . . . 85 ct.

☛ **Najdokładniejszy wróżbiarz z kart** czyli: Sztuka sobie i innym kabałę układać, jakoteż sobie i każdemu innemu przyszłość przepowiadać. Zestawiony z pozostałych rękopisów najsławniejszych wróżków i wróżbiarek. Z 36 subtelnemi kartami do ciągnienia i dokładnym opisem. Cena . . . . . 40 ct.

**Książeczka zabawna,** zawierająca: Opisy, podobieństwa, powiastki, bajki, przypowieści, rozprawy, zdania i przysłowia. Cena . . . . . 8 ct.

**Książeczka o rolnictwie i gospodarstwie.** (Kilka słów i porady dla rolników i gospodarzy). Cena 20 ct.

**Wykładacz snów.** (Najlepszy). Cena . . . . 16 ct.

„ „ „ W arkuszu. Cena 10 ct.

---

Dalsze Kalendarze nakładem E. Feitzingera w Cieszynie:

**Kalendarzyk kieszonkowy.** Cena . . . 20 ct.

„ w subtelnéj oprawie bronsowéj albo w skórce juchtowéj . . . 40 ct.

**Kalendarzyk pugilaresowy.** Cena . . . 25 ct.

**Kalendarzyk ścienny,** biórkowy, damski. Cena 25 ct.

**Kalendarz ścienny,** większy. Cena. . . 30 ct.

**Noworocznik Polski,** kalendarz dla umysłowéj rozrywki na rok 1880. Część literacka zestawiona przez Feliksa Kozubowskiego. Z ilustr., eleg. wyposażony. Cena . . . . . 48 ct.